# अध्याय – 1

# प्रस्तावना

व्यक्तिगत स्तर पर या वर्ग विशेष का उत्पीड़न, विकासशील एवं विकसित दोनों ही प्रकार के देशों में लम्बे अरसे से चिंतन के लिए एक गंभीर मुद्दा रहा है। विभिन्न सामाजिक असमानताओं और शक्ति विभाजन के ढ़ांचे की मौजूदगी के कारण भारतीय समाज की संरचना, उत्पीड़न के अनुभवों और शोषित वर्ग के जीवन को समझने के लिए सबसे उपयुक्त स्थान प्रदान करती है। भारतीय समाज में मौजूद जाति व्यवस्था, वर्ग भेद और बुर्जुआ पितृसत्तात्मक व्यवस्था का मिला जुला परिणाम ही है कि आधी से अधिक आबादी विभिन्न समुदायों की शक्ल में सामाजिक व्यवस्था के हाशिये पर पहुँच गई है। दलित इन हाशिये पर मौजूद (सीमांत) समुदायों के एक तबके का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिन्हें कि समय–समय पर अत्याज्य, अतिशूद्र, अछूत, हरिजन, अनुसूचित जति आदि नाम दिये जाते रहे हैं।

## अध्ययन क्यों ?

दलित, भारतीय समाज का एक प्रमुख सीमांत हिस्सा हैं, जो भेदभाव, शोषण और सामाजिक बहिष्कार के अतिअमानवीय स्वरूप का सामना करते हैं। एक दलित का जीवन मूलभूत स्वतंत्रताओं, जीने के लिए आवश्यक मूलभूत सुविधाओं तक पहुँच व अधिकार पर प्रतिबंधों से भरा होता है, जो कि मानवाधिकारों के उल्लंघन का व्यापक स्वरूप है। दलितों का जीवन एक ओर जहाँ उच्च जातियों द्वारा नकारे जाने, तुच्छ/निकृष्ट माने जाने और उत्पीड़ित किये जाने की गाथा है वहीं दूसरी ओर आधिकारिक रूप से व जनसेवी व्यवस्था द्वारा उपेक्षा, अस्वीकृति और निराशाजनक व्यवहार से भरा हुआ। हाल ही में संविधान के 73वें व 74वें संशोधन अधिनियम (1992) और उसके परिणाम स्वरूप दलितों समेत अन्य सीमांत समुदायों के राजनैतिक सामर्थ्य में वृद्धि पर सर्वाधिक चर्चा रही है। इसके बावजूद ऐसे समाचारों की कमी नहीं रही जिनमें उन समस्याओं का उल्लेख किया गया है जिनका कि नीति–निर्धारक संस्थाओं में सहभागिता और उसके महत्व के मुद्दे पर दलितों को सामना करना पड़ा।

इसी क्रम में आगे देखें तो दलित महिलाऐं जाति, वर्ग और लिंग के संदर्भ में दोहरे स्तर पर सीमांत हैं, उनके पास न तो आजीविका का कोई स्रोत हैं और न ही पर्याप्त राजनैतिक प्रतिनिधित्व। इस संदर्भ में यह बहुत आवश्यक हो जाता है कि दलितों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति, राजनैतिक सहभागिता और यदि शासकीय हस्तक्षेप (नीतियों) के परिणाम स्वरूप उनकी स्थिति में कोई सुधार हुआ है तो उसके यथार्थ तक पहुँचा जाए। पैरवी/सिकोईडिकॉन हमेशा इन सीमांत समुदायों की आवाज़ उठाता रहा है और राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर नीतियों को इनके हक में प्रभावित करने के लिये कार्य करता रहा है। इसी क्रम में पैरवी द्वारा उत्तर प्रदेश में दलितों की सामाजिक–आर्थिक दशा एवं नीति–निर्धारक संस्थाओं में उनकी सहभागिता पर एक अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन के लिए ''दलित'' को अनुसूचित जाति के संदर्भ में सीमित किया गया है। यद्यपि राष्ट्रीय स्तर के सिद्धांतों के विपरीत इस अध्ययन के लिए दलित समस्याओं के विभिन्न सूक्ष्म पहलुओं को बिल्कुल स्पष्ट करने की आवश्यकता है परंतु इसके भी कारण है कि क्यों उत्तर प्रदेश में दलितों की स्थिति पर शोध किये जाने और यथास्थिति रपट तैयार करने की ज़रूरत है। पहला – जनगणना 2001 के अनुसार उत्तर प्रदेश दलित जनसंख्या के बहुत बड़े प्रतिशत के साथ सर्वाधिक जनसंख्या वाले राज्यों में पहले स्थान पर है साथ ही अन्य राज्यों की तुलना में अपनी कुल जनसंख्या में दलित जनसंख्या के प्रतिशत की दृष्टि से इसका चौथा स्थान है। दूसरा – हाल ही में चुनी गई सरकार का

प्रतिनिधित्व ऐसे दल द्वारा किया गया जिसका बड़ा आधार दलित हैं। तीसरा – डेढ़ दशक की राजनैतिक अस्थिरता के बाद एक पूर्ण बहुमत की सरकार सत्ता में आई है। चौथा – राज्य में विभिन्न भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विविधताऐं होना और अंतिम व सबसे महत्वपूर्ण कारण राज्य में दलितों पर किये जाने वाले अत्याचारों की अधिकता, भिन्नता और अस्पष्टता है।

## उद्देश्य

1. उत्तर प्रदेश में दलितों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति का अध्ययन
2. नीति–निर्धारण संस्थाओं में दलितों की सहभागिता के स्तर, परिमाण और प्रभाव का पता लगाना
3. दलितों की दयनीय स्थिति में सुधार के लिए स्पष्ट मत/प्रस्ताव के साथ आगे आना

## स्रोत

अध्ययन की रपट जानकारी के द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। आधिकारिक/सरकारी व अनाधिकारिक/गैर–सरकारी दोनों ही प्रकार के स्रोतों से जानकारी का गहन सर्वेक्षण किया गया है। आधिकारिक जानकारी के ध्यानपूर्वक अध्ययन में नवीनतम जनगणना, राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण, एन.एस.एस.ओ., एस.आर.एस. जानकारी और संबंधित विभागों व मंत्रालयों की रपट का प्रमुखता से ध्यान रखा गया है। इनसे प्राप्त जानकारी का गैर–सरकारी स्रोतों से प्राप्त जानकारी के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया गया। नागर समाज संस्थानों, सामाजिक आंदोलनों और दलित कार्यकर्ताओं की प्रतिक्रियाओं को शामिल करने के साथ–साथ दलित संगठनों की वेबसाइट्स, समाचारों और लेखों को भी समुचित महत्व दिया गया है। इसके अतिरिक्त रपट के विश्लेषण की गुणवत्ता में वृद्धि के लिये दलित कार्यकर्ताओं, किसानों, प्रशासनिक व पुलिस अधिकारियों, शोधकर्ताओं, शिक्षाविदों और छात्रों के साथ पारस्परिक विमर्श के सत्र भी रखे गए। इनमें से कुल लोगों ने नाम उल्लेखित न किये जाने की शर्त पर अपना मत प्रस्तुत किया, इसलिये उनके बिंदुओं को उनके नाम के बिना ही उद्धृत किया गया है।

## अध्ययन का केन्द्रीय दृष्टिकोण

यह अध्ययन उत्तर प्रदेश में दलितों से संबंधित मुद्दों जैसे कि सामाजिक बहिष्कार, जीवन की सुरक्षा, आजीविका, स्वास्थ्य, शिक्षा, रोज़गार, सामाजिक सुरक्षा, महिलाओं की स्थिति और राजनैतिक सहभागिता तक पहुँच बनाकर हस्तक्षेप और विकास के लिये मानवाधिकार आधारित दृष्टिकोण पर निर्भर है।

## अध्ययन स्थल : उत्तर प्रदेश

जनगणना 2001 के अनुसार उ.प्र. में देश की कुल आबादी का 16.2 प्रतिशत हिस्सा है साथ ही उ.प्र. की कुल आबादी में 21.15 प्रतिशत दलित हैं। दलित जनसंख्या के संदर्भ में उ.प्र. का पहला व कुल जनसंख्या में दलितों के प्रतिशत की दृष्टि से चौथा स्थान है। भारत के कुल क्षेत्रफल का 7.3 प्रतिशत भाग उ.प्र. का है (उत्तराखंड के विभाजन के बाद)। उ.प्र. 9 भारतीय राज्यों व 1 अंतर्राष्ट्रीय सीमा (नेपाल) से घिरा हुआ है। सम्पूर्ण उ.प्र. 17 संभागों में विभाजित है जिन्हें कि आगे 70 जिलों में बांटा गया है। यह 70 जिले 300 उपजिलों, 704 कस्बों, 813

विकासखण्डों और 107452 गाँवों का संघटन हैं (जनगणना 2001 के अनुसार)। कस्बों, विकासखण्डों और गाँवों का यह संरचनात्मक स्वरूप उपलब्ध सेवाओं, सुविधाओं के साथ–साथ कानून व्यवस्था के विषय में भी विस्तृत जानकारी प्रदान करता है। आर्थिक दृष्टिकोण से यह जिले चार आर्थिक क्षेत्रों – पश्चिमी, मध्य, पूर्वी और बुन्देलखण्ड क्षेत्र के समूह में हैं जिनमें क्रमशः 26, 10, 27 और 7 जिले हैं।

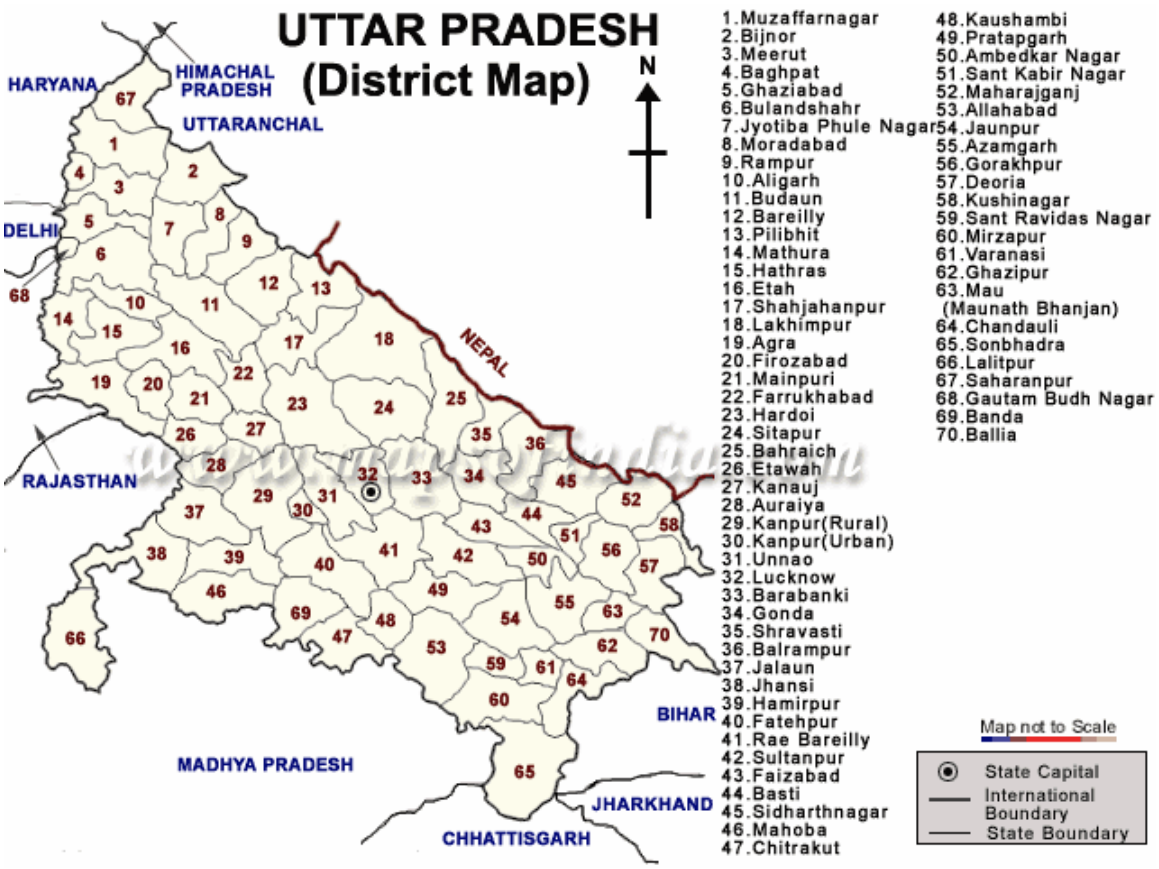


उ.प्र. की अर्थव्यवस्था का प्रमुख लक्षण आर्थिक सूचकों जैसे कि कृषि उत्पादकता, मूलभूत सुविधाओं और औद्योगिक विकास में क्षेत्रीय असंतुलन है। जहाँ पश्चिमी उ.प्र. औद्योगीकरण, उन्नत विकास दर के साथ–साथ कृषि समृद्ध है वहीं बुन्देलखण्ड में औद्योगिक इकाइयों की कमी और न्यून कृषि विकास दिखाई देता है जिसके कारण यह राज्य में न्यूनतम विकसित क्षेत्र है। प्रदेश में जनसंख्या वृद्धि दर, ख़राब स्वास्थ्य और न्यूनतम शिक्षा की दर अभी भी काफी अधिक है। पिछले एक दशक में उ.प्र. में जनसंख्या वृद्धि की दर 2.2 प्रतिशत रही जबकि संपूर्ण भारत की जनसंख्या वृद्धि दर 1.7 प्रतिशत है (जनगणना 2001)। जन्म और मृत्यु दर का प्रतिशत भी क्रमशः 31.6 और 9.7 प्रतिशत है जबकि संपूर्ण भारत का औसत 25 और 8.1 प्रतिशत है (एस.आर.एस. 2003)। नवीनतम राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के अनुसार उ.प्र. में शिशु मृत्यु दर और जन्म दर 73 व 3.8 प्रतिषत है जबकि भारत का औसत 57 व 2.7 प्रतिशत है। जनगणना 2001 के अनुसार भारत की कुल साक्षरता दर 65 प्रतिशत के मुकाबले उ.प्र. की साक्षरता दर बहुत नीचे (56 प्रतिशत) है। मानव विकास के लगभग सभी मानदण्डों में उ.प्र. का प्रदर्शन, अन्य राज्यों से तुलनात्मक अध्ययन में उसे काफी पीछे 15वें स्थान पर रखता है।

# अध्याय – 2

# दलित जनसांख्यिकी और सामाजिक स्थिति

उ.प्र. अपनी समस्त सुंदरता और व्यक्तिगत पसंद के साथ–साथ भारत का सर्वाधिक जनसंख्या वाला राज्य होने और सर्वाधिक अनुसूचित जाति जनसंख्या की उपस्थिति की दोहरी विशिष्टता रखता है। अनुसूचित जाति के लोगों की असीम संख्या के संदर्भ में उ.प्र. का पहला और कुल जनसंख्या में अनु.जातियों की उपस्थिति के अनुपात की दृष्टि से चौथा स्थान है। 2001 की जनगणना में उ.प्र. में अनु.जाति जनसंख्या 35148377 थी जबकि जनगणना 1991 के अनुसार 28044189. दोनों ही दशकीय गणनाओं में अनुसूचित जाति जनसंख्या का अनुपात लगभग स्थित 21.1 प्रतिषत रहा है।

उ.प्र. अपने में 70 जिलों को समाहित किये हुए है जिनमें से अनु.जाति जनसंख्या 29 जिला में 20 प्रतिशत से नीचे, 24 जिलों में 20 से 25 प्रतिशत है तथा 17 जिलो की कुल जनसंख्या का एक चौथाई हिस्सा अनुसूचित जातियाँ हैं। जिलेवार अनुसूचित जाति जनसंख्या का विभाजन (1) दिखाता है कि प्रतिशत में उनकी संख्या सबसे ज्यादा सोनभद्र जिले में (41.92 प्रतिशत) है, उसके बाद कौशाम्बी (36.10 प्रतिशत) और सीतापुर (31.87 प्रतिशत) जिले में। बागपत जिले में अनुसूचित जातियों का अनुपात सबसे कम (10.98 प्रतिशत) है। 1991–2001 के दशकीय दौर में अनुसूचित जाति की जनसंख्या में 25.3 प्रतिशत की वृद्धि दिखाई देती है जो कि कुल जनसंख्या वृद्धि दर 25.8 प्रतिशत से तुलनीय है।

अनुसूचित जाति जनसंख्या में यदि 0 से 6 आयुवर्ग के अनुपात को देखा जाए तो यह जनगणना 1991 में 21.5 प्रतिशत से घटकर 2001 में 20.6 प्रतिशत हुआ है, जो कि बहुत थोड़ा–सा अंतर है। जिला स्तर पर एक नज़र डालने पर दिखाई देता है कि जनगणना 2001 के अनुसार सर्वाधिक अनुपात चित्रकूल में (23.5 प्रतिशत) और सबसे कम कानपुर नगर में (17.2 प्रतिशत) है। अनुसूचिति जातियाँ मुख्य रूप से ग्रामीण हैं जो इससे स्पष्ट होता है कि उनमें से 87.7 प्रतिशत गाँवों में रहते हैं। अनुसूचित जाति ग्रामीण जनसंख्या सबसे ज्यादा जिला सीतापुर में (1111955) है, जिसके बाद हरदोई (10,20,828) और आज़मगढ़ (9,78,190) है। अनुसूचित जातियों की शहरी जनसंख्या सबसे ज्यादा आगरा (3,45,989), कानपुर नगर (3,15,912) और ग़ाज़ियाबाद (3,08,831) में है।

यदि हम राज्यवार अनुसूचित जाति गणना की विविधता को ध्यान में रखते हुए देखें तो हम पाते हैं कि संवैधानिक व्यवस्था (अनुसूचित जातियाँ) 1950[(2)] में सूचीबद्ध 66 जातियों (3) के कारण उ.प्र. का पांचवां स्थान है और उनमें से सभी की जनगणना 2001 में गणना की गई है। इन 66 जातियों में से चमार जाति की सबसे ज्यादा जनसंख्या (19,803,106) है जो कि कुल अनुसूचित जाति जनसंख्या का 56.3 प्रतिशत हिस्सा है। 'पासी' दूसरा सबसे बड़ा समुदाय है जिसकी जनसंख्या (5,597,002) कुल अनुसूचित जाति जनसंख्या का 15.9 प्रतिशत है। घटते क्रम में तीन अन्य अनुसूचित जातियाँ धोबी, कोरी और वाल्मीकि हैं। यह पाँचों जातियाँ कुल अनुसूचित जाति जनसंख्या के 87.5 प्रतिशत हिस्से को संघटित करती हैं। गोंडा, धनुक और खटीक की जनसंख्या 443,457 से 764,765 है, जो कि 5 प्रतिशत है। 9 अन्य अनुसूचित जातियाँ (रावत, बहेलिया, खटवार, कोल आदि) का प्रतिशत 4.5 है। इसके अतिरिक्त बाकी 49 अनुसूचित जातियाँ राज्य की कुल अनुसूचित जाति जनसंख्या का 3 प्रतिशत हिस्सा हैं। 17 अनुसूचित जातियों की जनसंख्या 5000 के नीचे है, जिनमें से चार – घरमी, लालबेगी, बज्गी और खोरोत बहुत ही कम हैं, प्रत्येक की जनसंख्या 1000 से भी कम है। एक–एक जाति के स्तर पर चमार मुख्य रूप से आज़मगढ़ए जौनपुर, आगरा, बिजनौर, सहारनपुर, गोरखपुर और ग़ाजीपुर जिले में हैं। पासियों की सबसे ज्यादा संख्या सीतापुर,

रायबरेली, हरदोई और इलाहाबाद जिले में है। अन्य तीन बड़े समुदायों – धोबी, कोरी और वाल्मीकि की सर्वाधिक जनसंख्या बरेली, सुल्तानपुर और ग़ाज़ियाबाद जिले में है।

## सामाजिक स्थिति : अवधारणा

ऐतिहासिक रूप से भारतीय समाज में जीवन को नियंत्रित करने के लिये जाति व्यवस्था ने एक सामाजिक और आर्थिक ढाँचा बनाया। जाति व्यवस्था के मौलिक स्वरूप में लोगों को आरोपित सामाजिक स्तर और उसके अनुरूप कार्य के आधार पर गैर–बराबर सामाजिक समुदायों के श्रेणी क्रम में बांटना शामिल है। जिसके परिणाम स्वरूप मूलभूत अधिकार और कर्तव्य जन्म के आधार पर तय होते हैं, जिन्हें बदला नहीं जा सकता। मूलतः जाति आधारित भारतीय समाज लोगों को चार समूहों में विभाजित करता है, जो कि वर्ण के रूप में बेहतर जाने जाते हैं। इनके क्रम में ऊपर से नीचे आने पर क्रमशः ब्राह्मण (पुरोहित जातियाँ), क्षत्रिय (योद्धा जातियाँ), वैश्य (व्यवसायी जातियाँ) और शूद्र (मज़दूर व सेवक जातियाँ) आते हैं। इसके साथ ही एक और वर्ग भी है जिसे कुछ समय के लिए पाँचवा वर्ण कहा गया परंतु अंततः किसी जाति में सम्मिलित नहीं किया गया। पारंपरिक रूप से इस वर्ग को अस्पृश्य (अछूत) या जाति से बाहर माना जाता रहा है। आज उन्हें दलित, अनुसूचित जाति या हरिजन के रूप में बेहतर जाना जाता है।

प्रकाश लुइस (2003) ने भारतीय जाति व्यवस्था में बहुत ध्यानपूर्वक उल्लेखित किया है कि इसमें सोचने का एक दृष्टिकोण है जो इस मिथक को प्रसारित करता है कि सामाजिक इकाइयों का विभाजन और उन्हें जाति आधारित श्रेणी क्रम में रखना सामाजिक एकीकरण का आधार है। इसी को विस्तार देते हुए यह मत भी प्रस्तुत किया जाता है कि एकीकृत जाति व्यवस्था भारतीय समाज के विघटन को रोकने का भी आधार है।

इसके आगे पवित्रता और अपवित्रता की धारणा उस विचारधारा की रचना करती है जिस पर जाति श्रेणीक्रम आधारित है। ब्राह्मण पारंपरिक रूप से सबसे पवित्र और ऊँचे माने जाते रहे हैं जबकि अस्पृश्य सर्वाधिक निकृष्ट और अपवित्र (जाटव, 1997)

## दलित : परिचय

हिन्दी शब्द 'दलित' भारतीय जाति व्यवस्था के अन्याय और क्रूरता के चरम को प्रभावी रूप में परिभाषित करने की दृष्टि से पिछले कुछ वर्षों में अंतर्राष्ट्रीय शब्दकोष में शामिल किया गया है (बिदवई 2008)। व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'दलित' शब्द संस्कृत के 'दल' से आया है जिसका अर्थ अन्य हिस्से से टूटा हुआ, तंगहाल, जिसके साथ ठीक व्यवहार न किया जाता हो या दमित है। दलितों को कई नामों से बुलाया जाता रहा है जैसे कि अछूत, हरिजन (नरसिंह मेहता द्वारा निर्मित व महात्मा गांधी द्वारा ग्रहण व प्रचलित किया गया शब्द), बाहरी जातियाँ (जे.एच. हट्टन), दबा हुआ वर्ग (ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा), और प्राचीन समय में म्लेच्छ, चाण्डाल (मनु), पंचम (पाँचवां वर्ग), अवर्ण (चारों वर्णों से बाहर), निषाद, अत्याज्य, अतिशूद्र आदि। 70 के दशक में पेंथर पार्टी द्वारा 'दलित' को प्रचलित किया गया। पहले अछूत, निचली जाति, हरिजन आदि के नाम से जानी जाने वाली जातियाँ आज अपने लिये सम्बोधन के रूप में 'दलित' शब्द को बहुतायत से अपना रही हैं।

दलित एक वर्ग के बजाय उन निचली जातियों के सदस्यों की ओर संकेत करता है जिन्होंने अपने पारंपरिक रोज़गार के साथ जुड़ी अत्यंत अपवित्रता और गंदगी के कारण अस्पृश्यता के कलंक में जन्म लिया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की वंशानुगत चातुर्वर्ण जाति व्यवस्था से दलित बाहर हैं, उन्हें अपवित्र और गंदा/निकृष्ट

माना जाता है और भौतिक व सामाजिक रूप से समाज से बाहर निकालकर अलग कर दिया गया है। व्यावसायिक और भौतिक/शारीरिक उपस्थिति अक्सर दलितों को जाति व्यवस्था के सदस्यों से अलग करती है। दलित सामान्यतः एक गाँव के बाहरी हिस्से में छोटे से समूह के रूप में सबसे अलग रहते हैं। वे किसी भी क्षेत्र में आसानी से उत्पीड़ित किये जाने वाले अल्पसंख्यक होते हैं। उनकी यह असुरक्षित स्थिति शोषण और उत्पीड़न के विरोध को मुश्किल बनाती है। जातिगत पहचान के कारण दलित निरंतर भेदभाव और उत्पीड़न का सामना करते हैं जो कि उन्हें गौरवपूर्ण जीवन और अन्य मूलभूत मानवाधिकारों (जो प्रत्येक भारतीय का अधिकार हैं) का उपयोग करने से रोकता है।

कुछ विद्वानों और कार्यकर्ताओं का मानना है कि दलित शब्द का उपयोग करते समय उसमें अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति दोंनों को ही शामिल किया जाना चाहिए, यहाँ तक कि अल्पसंख्यकों और महिलाओं को भी। चूँकि वर्तमान अध्ययन के लिये 'दलित' शब्द को अनुसूचित जातियों तक ही सीमित किया गया है। इसलिये यह आवश्यक हो जाता है कि उन जातियों को सूचीबद्ध किया जाए जिन्हें कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 341 के अनुसार अनुसचित जातियों के रूप में नामित किया गया है।

## उत्तरप्रदेश में दलित

दलित भारत की जनसंख्या के काफी बड़े भाग का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रत्येक 6 भारतीयों में से एक दलित है। जनगणना 1991 के अनुसार भारत में दलितों की कुल संख्या लगभग 138 करोड़ थी। 2001 में देश की कुल जनसंख्या का 16.2 प्रतिशत (166.67 करोड़) हिस्सा दलित हैं। देश की कुल दलित जनसंख्या का सबसे बड़ा प्रतिशत (21.15 प्रतिशत) उत्तर प्रदेश में है, जिसके बाद पश्चिम बंगाल (11.1 प्रतिशत), बिहार (7.8 प्रतिशत), आन्ध्रप्रदेश (7.4 प्रतिशत) और तमिलनाडु (7.1 प्रतिशत) का स्थान है। वास्तव में 57 प्रतिशत से अधिक दलित जनसंख्या इन पाँचों राज्यों में निवासरत है। इसके आगे दलितों के सर्वाधिक केन्द्रीयकरण की दृष्टि से राज्यों की कुल जनसंख्या से तुलनात्मक आंकड़े इन प्रमुख चार राज्यों में इस प्रकार हैं – पंजाब 28.9 प्रतिशत, हिमाचल प्रदेश 24.7 प्रतिशत, पश्चिम बंगाल 23 प्रतिशत और उत्तर प्रदेश 21.1 प्रतिशत। इस प्रकार उत्तर प्रदेश का सर्वाधिक दलित जनसंख्या की दृष्टि से पहला व राज्य की कुल जनसंख्या में दलित जनसंख्या के प्रतिशत की दृष्टि से चौथा स्थान है। राज्य में जनसंख्या के जातिवार विभाजन में दलित, अन्य पिछड़े वर्ग के बाद दूसरे स्थान पर हैं।

उत्तर प्रदेश के सभी दलित समुदायों में सर्वाधिक प्रतिशत चमार, धूसिया, झूसिया, जाटव (56.3 प्रतिशत) और पासी, तर्माली (15.9 प्रतिशत) जातियों का है। मुख्यतः पाँच अनुसूचित जाति समुदाय चमार, पासी, धोबी, कोरी और वाल्मीकि उत्तरप्रदेश में दलित जनसंख्या का लगभग 87.5 प्रतिशत हैं।

इस प्रकार आंकड़ों के संदर्भ में लोकतांत्रिक चुनावी व्यवस्था में दलित एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। लोकतंत्र में लोगों की उपस्थिति और गणना के महत्व की दृष्टि से यह दलितों की वह संख्या है जो लोकतांत्रिक रूप से ध्यान देने योग्य है, जिसका परिणाम उत्तर प्रदेश में दलितों के विस्तृत राजनैतिक संगठन के रूप में सामने आया है। काशीराम द्वारा हिन्दू वर्ण के विरोध में प्रारंभ किये गये तीव्र आंदोलन और जातियों के मध्य मैत्री संबंध स्थापित करने (जिसका परिणाम बिखरे हुए जनप्रतिनिधियों और गठबंधन वाली सरकार के रूप में सामने आया) के समय से इसके समर्थक दिखाई देते रहे हैं। यह एक लम्बे अंतराल के बाद हुआ है कि एक ही दल की सरकार सत्ता में आई है। यह सारे तथ्य भी इस अध्ययन के केन्द्रीय दृष्टिकोण में उल्लेखित किये गए मानदण्डों के अनुसार उत्तर प्रदेश में दलितों की स्थिति के मूल्यांकन में महत्वपूर्ण हैं।

## अस्पृश्यता से सामाजिक बहिष्कार की ओर

दलित समुदाय के लिये सदियों से निरंतर चला आ रहा यह लम्बा सामाजिक संघर्ष, रोज़मर्रा का संघर्ष बन गया है। समकालीन भारत के समाजिक श्रेणीक्रम में अन्य स्तरों पर उपलब्ध शिक्षा, रोज़गार और अन्य अवसर आज भी इस समुदाय की पहुँच से बाहर हैं। सामाजिक जागरूकता के संदर्भ में प्रतिदिन का निर्वाह और शिक्षा की कमी दलितों के एक बहुत बड़े हिस्से की सहभागिता को बाधित करता है। दलितों की स्थिति में बहुत धीमी गति से बदलाव आया है इसे जानने के लिये इस बदलाव की प्रक्रिया और इसमें अड़चनों को समझना होगा। अस्पृश्यता के विभिन्न रूपों से लेकर सामाजिक बहिष्कार के बहुत ही सूक्ष्म क्षेत्रों तक दलितों के नकारे जाने, उत्पीड़न और शोषण को समझना होगा। साथ ही उपलब्ध संस्थानों की कार्यप्रणाली का आंकलन किया जाना और दलितों को उत्पीड़ित वर्ग के दायरे में कैद करने के बजाय उन्हें जीवन की मुख्यधारा में सम्मिलित करने में लिये गए परिमाण की समीक्षा किया जाना भी आवश्यक है।

## अस्पृश्यता (छुआछूत)

हिन्दू समाज में अस्पृश्यता सदियों से चली आ रही प्रथा है। इस प्रथा को निरंतर बनाये रखने के लिए सबसे उल्लेखनीय दलील ब्राह्मणों की पवित्रता को बनाये रखने और प्रदूषण को दूर रखने (अपवित्र होने से बचाने) की अभिलाषा है। जाति व्यवस्था को सुरक्षित बनाये रखने की कोशिश में, मनु की प्राचीन आचार–संहिता (मनुस्मृति) में ऐसे हजारों नियम हैं जो विभिन्न जातियों में स्वीकार्य पारस्परिक व्यवहार की व्याख्या करते हैं। मनु की आचार संहिता एक नैतिकता संबंधी शास्त्र है जिसे प्राचीन हिन्दुत्व द्वारा जारी रखा गया है। यह सिखाता है कि जाति व्यवस्था ईश्वरीय विधान (ईश्वर द्वारा बनाई गई व्यवस्था) है और इसका सबसे ऊपर होने का अर्थ शारीरिक अवस्थाओं की पुनरावृति है (massey, 1999)। इसके नियमों में किसी जाति के व्यक्ति द्वारा किन वस्तुओं का उपयोग किया जा सकता है, किनका नहीं, वह क्या खा सकता है क्या नहीं, किसके साथ भोजन कर सकता है किसके साथ नहीं, और सबसे महत्वपूर्ण किसे छू सकते है किसे नहीं आदि की व्याख्या की गई है। अस्पृश्य (अछूत) इसीलिये कहे गए क्योंकि  उनकी छाया मात्र भी अपवित्र मानी गई।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता (छुआछूत) के उन्मूलन के लिए है और इसके अनुसार स्पष्ट किया गया है कि अस्पृश्यता को मानना/प्रयोग करना प्रत्येक भारतीय नागरिक और व्यक्तिगत की मौलिक स्वतंत्रता और

मूलभूत अधिकारों का उल्लंघन करना है। राज्य की विधायिका ने भी यह सुनिश्चित करने के लिए कि प्रभावशाली जातियाँ दलितों को प्रदूषित रोज़गार करने के लिये विवश न कर सकें, कई कानून और योजनाऐं (जैसे कि छुआछूत (अपराध) अधिनियम 1955, अनुसूचित जाति/जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम 1989, अनुच्छेद 338 में 65वें संशोधन1990 के बाद राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग 1992, समग्र स्वच्छता अभियान, 2002) लागू किय।

सफाई करना, गंदगी उठाना और चर्मकार्य अभी तक दलितों के कार्य हैं, जिनके सदस्यों को निचले दर्जे का कार्य करने से मना करने पर शारीरिक दुर्व्यवहार और सामाजिक बहिष्कार के साथ–साथ धमकाया जाता है।

## अस्प्रश्यता के प्रकार और भेदभाव

अस्पृश्ता (छुआछूत) के नाम पर दलित, प्रभावशाली जातियों द्वारा कार्य और जन्म पर आधारित लगभग 140 प्रकार के भेदभावों का सामना करते हैं, जिनमें से कुछ निम्न हैं –

- अन्य जातियों के सदस्यों के साथ भोजन की मनाही
- अन्य जातियों के सदस्यों के साथ विवाह करने की मनाही
- ग्रामीण चाय की दूकानों में दलितों के लिये अलग गिलास
- जलपान गृहों में अलग बर्तन व बैठने की भेदभावपूर्ण व्यवस्था
- ग्रामीण उत्सवों और त्यौहारों में भोजन व बैठने की अलग व्यवस्था
- ग्रामीण मन्दिरों में प्रवेश की मनाही
- प्रभावशाली जाति के सदस्यों के सामने चप्पल/जूते पहनने या छाता लगाने की मनी
- देवदासी व्यवस्था – दलित महिलाओं की धर्मानुसार वैश्यावृत्ति
- प्रभावशाली जातियों के घर में प्रवेश पर मनाही
- गाँव के अंदर साइकिल पर सवार होने की मनाही
- सार्वजनिक ग्रामीण रास्तों के उपयोग की मनाही
- अलग श्मशान भूमि
- सार्वजनिक सम्पत्ति और संसाधनों (कुँआ, तालाब, मन्दिर इत्यादि) के उपयोग पर प्रतिबंध
- विद्यालयों में दलित बच्चों के बैठने का अलग स्थान
- चुनाव लड़ने और मतदान के अधिकार का उपयोग करने पर रोक
- चुनाव के दौरान मतदान न करने या कुछ निश्चित प्रत्याशियों के पक्ष में मतदान करने को विवश करना
- औसत से कम मज़दूरी

- बंधुआ मज़दूर
- अपने पारंपरिक कार्य करने से इन्कार करने पर प्रभावशाली जातियों द्वारा सामाजिक बहिष्कार का सामना

भारत के 11 बड़े राज्यों के 565 गाँवों में छुआछूत की प्रथा पर किया गया एक सर्वेक्षण शोध यह स्पष्ट प्रदर्शित करता है कि समकालीन भारत में छुआछूत की अमानवीय और ग़ैरकानूनी प्रथा आज भी सभी जगह व्याप्त है। इस शोध के प्रमुख तथ्य प्रकोष्ठ 2.1 में दिये गए हैं।

**प्रकोष्ठ 2.1 :**

2.1 अस्पृश्यता और जाति आधारित भेदभाव की झलक

*38 प्रतिशत सरकारी स्कूलों में भोजन के दौरान दलित बच्चों को अलग बैठाया जाता है। 20 प्रतिशत स्कूलों में दलित बच्चों को उसी स्रोत से पानी पीने की अनुमति नहीं है जिससे अन्य बच्चे पीते हैं।*

*27.6 प्रतिशत दलित पुलिस थानों में प्रवेश से रोके जाते हैं और 25.7 प्रतिशत राशन की दूकानों में प्रवेश से। 33 प्रतिशत जन स्वास्थ्य कार्यकर्ता दलित घरों में जाने से इन्कार करते हैं और 23.5 प्रतिशत दलित आज भी अपने पत्रों की अपने घर पर सुपुर्दगी नहीं पाते।*

*30.8 प्रतिशत स्व–सहायता समूहों और सहकारी संस्थानों एवं 29.6 प्रतिशत पंचायत कार्यालयों में दलितों के बैठने की अलग व्यवस्था पाई गई। 14.4 प्रतिशत गाँवों में दलितों को पंचायत भवन में प्रवेश की भी अनुमति नहीं है। 12 प्रतिशत गाँवों में दलितों को मतदान केन्द्र पर पहुँचने से रोका जाता है या अलग कतार बनाने के लिये बाध्य किया जाता है।*

*48.4 प्रतिशत गाँवों में पानी के सार्वजनिक स्रोतों का दलित उपयोग नहीं कर सकते। 35.8 प्रतिशत गाँवों में दलित दूकानों में प्रवेश नहीं कर सकते, उन्हें दूकान से कुछ दूरी पर इंतज़ार करना होता है, दूकानदार उनके द्वारा खरीदे गए सामाना का सीधे उन्हें न देते हुए ज़मीन पर रख देता है और इसी तरह उनसे पैसे भी बिना सीधे संपर्क के लेता है। इसी प्रकार लगभग एक तिहाई गाँवों में चाय की दूकानों पर दलितों को अलग बैठना और अलग प्यालों उपयोग करना पड़ता है।*

*73 प्रतिशत से अधिक गाँवों में दलितों को अदलितों के घरों में प्रवेश की अनुमति नहीं है और 70 प्रतिशत गाँवों में अदलित दलितों के साथ भोजन नहीं करते। 47 प्रतिशत से अधिक गाँवों में सार्वजनिक रास्तों पर वैवाहिक गतिविधियाँ सम्पन्न करने पर प्रतिबंध है। 10 से 20 प्रतिशत गाँवों में दलितों को साफ और आधुनिक/प्रचलित कपड़े व धूप का चश्मा लगाने की अनुमति नहीं है। वे साइकिल पर सवार नहीं हो सकते, छाता नहीं लगा सकते, सार्वजनिक रास्तों पर और प्रभावशाली जातियों के सामने चप्पल/जूते नहीं पहन सकते, धूम्रपान नहीं कर सकते, यहाँ तक कि बिना सिर झुकाए खड़े नहीं हो सकते।*

*मन्दिरों में प्रवेश पर प्रतिबंध का औसत 64 प्रतिशत है, जिसका स्तर उत्तर प्रदेश में 47 प्रतिशत से लेकर कर्नाटक में 94 प्रतिशत तक है। 48.9 प्रतिशत गाँवों में दलित श्मशान भूमि के उपयोग के अधिकार से वंचित हैं।*

*25 प्रतिशत गाँवों में दलितों को अन्य मज़दूरों की तुलना में कम मज़दूरी दी जाति है साथ ही उनका मज़दूरी का समय अधिक होता है। उन्हें विलंब से मज़दूरी दी जाती है और शाब्दिक व शारीरिक रूप से उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता है। 37 प्रतिशत गाँवों में दलितों को मज़दूरी का भुगतान शारीरिक संपर्क से बचते हुए दूरी से ही किया जाता है। 35 प्रतिशत गाँवों` दलित अपने उत्पादों का स्थानीय बाजार में लाकर नहीं बेच सकते, इसके अलावा उन्हें गाँव से दूर अपने उत्पाद बेचने और अपना लाभ कम करने इत्यादि के लिए विवश किया जाता है।*

यह स्पष्ट है कि छुआछूत की प्रथा आज भी फैली हुई है और यह दलितों के किसी हिस्से द्वारा दूषित या अपवित्र की जाने वाली पवित्रता नहीं है बल्कि उनकी मौजूदगी किसी नाई की दूकान को भी दूषित और अपवित्र करती है। उदाहरण के लिए राजस्थान के जोधपुर जिले में नाई अपनी दूकानों में दलितों को प्रवेश की अनुमति नहीं देते। (लुइस, 2003). यह बहुत खेदपूर्ण है कि अस्पृश्यता केवल वयस्कों के कार्यक्षेत्र तक ही सीमित नहीं है, बच्चे भी अस्पृश्यता की धारणा से भरे हुए हैं। ''हाल ही में जबकि सुश्री मायावती, एक दलित, राज्य की मुख्यमंत्री हैं, समाचार प्राप्त हुए हैं कि दिसम्बर 2007 में राज्य द्वारा संचालित दो स्कूलों में बच्चों ने दलित महिलाओं द्वारा पकाये गए मध्यान्ह भोजन को लेने से इनर कर दिया।'' उदाहरण के लिए लखनऊ जिले में बीवीपुर विद्यालय के बच्चों ने भोजन करने से इन्कार कर दिया क्योंकि भोजन पकाने वाली महिला 'फूलकुमारी' एक दलित थी, हफ्तों लम्बे विवाद के बाद जिसके स्थान पर एक अन्य पिछड़े वर्ग की महिला को रखा गया। ठीक इसी प्रकार इटावा जिले के हज़रतपुर गाँव में दलित रसोइया सूरज माखी और केलादेवी द्वारा तैयार किये गए भोजन को खाने से इन्कार कर दिया गया। दूसरे मामले में सामाजिक न्याय और विकास मंत्रालय के अध्यक्ष मीरा कुमार ने प्रमुख राज्य सचिव पी. के. मिश्रा को शीध्र ही रपट प्रस्तुत करने और यह सुनिश्चित करने कि भविष्य में इस तरह की घटनाऐं दोबारा न हों, का आदेश दिया है। (Dalit in News, Jan. 29, 2008)

संवैधानिक कानूनों के बावजूद छुआछूत की प्रथाओं पर कोई जाँच नहीं हैं और यह सभी प्रथायें दलितों को समाज की मुख्यधारा से अलग रखती हैं इसीलिये दलितों के सीमांत होने का निरंतर चलने वाला चक्र और सामाजिक बहिष्कार आज भी अपनी चरम गति पर है।

## सामाजिक बहिष्कार के मुद्दे

सामाजिक बहिष्कार को जीवन के अवसरों के उपयोग में अपारदर्शिता और न्याय की कमी की प्रमुखता को प्रदर्शित करते हुए विभिन्न सामाजिक संबंधों/जीवन के क्षेत्रों में सहभागिता से बाहर रखने की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया गया है।

यह संगठनात्मक समूहों और विषयांतर्गत स्तरों पर दिखाई देने वाले सामाजिक संबंधों और परस्परिक व्यवहार (जो कि संगठनात्मक समूहों और विषयांतर्गत स्तरों पर दिखाई दिखाई देता है) के क्षेत्र में सामाजिक सीमाओं के सक्रिय और गतिशील निर्माण को इंगित करता है, जहाँ कि संचार संबंधों, आपसी समझ और प्रत्यक्ष बोध जो कि आत्मसंवेदना (आदर, आत्मविश्वास, आत्मसम्मान) के विकास और व्यक्ति कैसे प्राप्त अवसरों का उपयोग करने के योग्य हो सकता है को प्रभावी करने का अभिन्न हिस्सा है, की क्रियान्वयन प्रक्रिया के माध्यम से इन सामाजिक सीमाओं को संचालित किया जाता है। (कबीर, 2000). लुइस (2003) द्वारा उल्लेखित किया गया है कि मानव विकास के दौर में सामाजिक बहिष्कार को लोगों के एक समूह को सामजिक जीवन के राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों से अलग करने के रूप में लिया गया है। किन्तु वास्तविक सामाजिक स्थिति जिसको यहाँ स्पष्ट करने की ज़रूरत है, यह है कि सामाजिक बहिष्कार सिर्फ़ पृथक्करण और वंचित रखने तक सीमित नहीं है। सामाजिक रूप से एकांतवास और अलगकिया जाना एक ही समुदाय और देश के लोगों के बीच उच्चता और हीनता की भावना को जन्म देता है। इसके आगे यह अधिकारी होने और वंचित रखने की व्यवस्था में भी अपने चरम तक पहुँचता है। अलग रखने के लिए प्रमुख सामाजिक तथ्य सामाजिक और धार्मिक परंपराओं द्वारा इसे उचित और तर्कसंगत ठहराया जाना है।

सामाजिक बहिष्कार और पृथक्करण अधिकार करने, भेदभाव और वंचित रखन का स्थान प्रदान करता है, इससे जो लाभ उठाते हैं वे इस संरचना में किसी प्रकार का बदलाव नहीं चाहते। न सिर्फ लोगों को हीन, असमर्थ, अयोग्य और नीचा रखने के अभिलाषी बल्कि जो इससे पीड़ित हैं वे भी इस व्यवस्था में बदलाव नहीं चाहते और यह

इसलिये नहीं कि वे इस अमानवीय सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखना चाहते हैं बल्कि इसलिये है क्योंकि उन्हें डर है कि यदि वे इस भेदभाव का प्रतिरोध करेंगे तो उन्हें इससे भी अधिक भेभभाव और दमन का सामना करना पड़ सकता है।

उत्पीड़ितों को पीढ़ियों से समाज के प्रभावशाली हिस्से की सर्वोच्चता और अधिकार करने की शक्ति के नीचे बनाए रखने की तीव्र अचेतन इच्छा दिखाई देती है। इस प्रकार यहाँ जाति व्यवस्था की निरंतरता के पीछे एक सामाजिक सांस्कृतिक कार्यसूची है। (लुइस, 2003).

दलितों के नज़रिये से यह जाति द्वेष, भेदभाव और अमानवीकरण का संस्थागत रू‍प है और यह सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में लागू है। इस प्रक्रिया में जातिद्वेष, निम्न जातियों को संसाधनों, शक्ति और मानवीय गरिमा से वंचित करता है और उनकी सामाजिक मौजूदगी के स्तर को कमतर करता रहा है। इस प्रकार जाति पृथक्करण अपने को एक अलग क्षेत्र में सीमित न करते हुए अन्य क्रियाकलापों पर भी नियंत्रण रखता है। अतः स्पष्ट है कि दलित पृथक्करण, बहिष्कार और भेदभाव की समैतिहासिक प्रक्रिया के अरसे से शिकार हैं।

सामाजिक और धार्मिक परंपराओं तथा सेवाओं तक पहुँच से संबंधित अवसरों को नकारने के द्वारा सामाजिक बहिष्कार को बल देने के लिए समय–समय पर सामाजिक और धार्मिक संगठन प्रकट होते रहते हैं। जाति आधारित बहिष्कार संसाधनों/सुविधाओं जैसे कि स्वास्थ्य, शिक्षा और रोज़गार तक पहुँच को बढ़ाने के अवसरों में रिसता हुआ दिखाई देता है। यह (जाति आधारित बहिष्कार) संस्थानों द्वारा प्रदत्त सेवाओं और उत्पादों तक दलितों की पहुँच को बाधित करता है। अगले अध्याय में जीवन की मूलभूत सेवाओं और एक आदर्श जीवन को बनाए रखने की आवश्यकता तक पहुँच में दलितों के सामाजिक बहिष्कार का गहराई से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

# अध्याय – 3

# दलितों की राजनैतिक सहभागिता

लोकतंत्र का आशय सभ्य समाज में बढ़ी हुई विविधताओं का एक–दूसरे से सामंजस्य सीापित करना है। लोकतंत्र के विषय में यह माना जाता है कि नीति–निर्माण की प्रक्रिया में जिन वर्गों का प्रतिनिधित्व नहीं के बराबर या फिर बहुत कम है, उनके क्षमतावर्द्धन में यह बहुत महत्वपूर्व भूमिका अदा करता है।

उ.प्र., भारत में सामाजिक और विभागीय (क्षेत्रीय) विविधताओं का विशिष्ट उदाहरण है। यह दर्शाने के लिये कि लोकतंत्र भारत में अपनी परीक्षा में सफल रहा है, इसे उ.प्र. की विभिन्न कार्यप्रणालियों में लगभग निरूपित किया गया है।

किन्तु एक सफल सहभागी लोकतंत्र का यह दावा उ.प्र. में 2007 के विधानसभा चुनावों के प्रकाश में खोखला प्रतीत होता है। उ.प्र. में 2007 का यह चुनाव 403 चुनावक्षेत्रों में था जिसमें से 89 चुनाव क्षेत्र अनुसूचित जाति के सदस्यों के लिये आरक्षित थे। कुल 6086 प्रत्याशी राज्य की विधानसभा में प्रतिनिधित्व के लिये प्रतिस्पर्धा में थे जिनमें से मात्र 1093 प्रत्याशी अनुसूचित जाति से थे। सामान्य और अनुसूचित जाति दोनों ही वर्गों का मतदान प्रतिशत लगभग 45 प्रतिशत रहा। चुनाव परिणाम में अनुसूचित जाति के 90 प्रत्याशी चुने गए। अनुसूचित जाति के प्रत्याशी अन्य चुनावी क्षेत्रों से भी चुनाव लड़े किन्तु धौरहरा (चुनाव क्षेत्र 57) को छोड़कर बाकी 313 अनारक्षित चुनाव क्षेत्रों से इस समुदाय का कोई प्रत्याशी चुनाव में विजयी नहीं हो सका। धौरहरा के मामले में भी चौंका देने वाला एक जबरदस्त रहस्य सामने आया कि इस चुनाव क्षेत्र में चुनाव लड़ने वाले सारे प्रत्याशी अनुसूचित जाति के ही थे, सामान्य वर्ग का कोई भी प्रत्याशी इस चुनाव क्षेत्र से चुनाव नहीं लड़ा, और यदि ऐसा होता तो संभवतः धौरहरा की भी यह उपलब्धि न रहती।

एक और बड़ी ही कटु वास्तविकता श्री बूटा सिंह, अध्यक्ष, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग, द्वारा सामने लाई गई कि जो अनुसूचित जाति की सूची में नहीं हैं उनके द्वारा फर्जी जाति प्रमाण–पत्र उपलब्ध किए गए और उ.प्र. के विधानसभा चुनावों में उनका उपयोग किया गया। (4) यहाँ इस बात का उल्लेख करना भी आवश्यक है कि भूतपूर्व सरकार ने 16 अन्य पिछड़ी जातियों को अपने राजनैतिक/चुनावी मुद्दे के तहत अनुसूचित जाति की सूची में शामिल किया था। यद्यपि इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा 20 दिसम्बर 2005 को अपने निर्णय में इसे निरस्त भी कर दिया गया था, बावजूद इसके अनुचित लाभ प्राप्त करने के लिए फर्जी प्रमाण–पत्रों का उपयोग किया गया।

पंचायती राज एक कार्यप्रणाली/व्यवस्था है जो कि दलितों के राजनैतिक समावेश के लिए बहुत ही लाभकारी हो सकती थी, परंतु पिछला अनुभव यह दर्शाता है कि उ.प्र. में अधिनियम में कमियों के साथ, गहराई से जमे हुए सामंती मूल्यों का जुड़ाव दलितों को पंचायती राज व्यवस्था द्वारा अधिकारयुक्त राजनैतिक सहभागिता से वंचित करता है। अधिनियमों की कमी के साथ–साथ राज्य सरकार के सुस्त रवैये ने कानून की धाराओं और लोगों की आकांक्षाओं का मज़ाक बनाया है।

## उत्तरप्रदेश में विभिन्न समूहों का प्रतिनिधित्व

| ग्राम पंचायत (ग्राम प्रधान) | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| संख्या | चुने गए प्रतिनिधियों की संख्या | | | | | | | | | |
| | सामान्य (18625) | | अनु. जाति (12049) | | अनु. जनजाति (59) | | पिछड़ी जातियाँ (21243) | | कुल (51976) | |
| | महिला | पुरुष | महिला | पुरुष | महिला | पुरुष | महिला | पुरुष | महिला | पुरुष |
| 52000 | 7931 | 10694 | 5085 | 6964 | 43 | 16 | 13010 | 8233 | 26069 | 25907 |
| चयनित प्रतिनिधियों का प्रतिशत | 15.26 | 20.57 | 9.78 | 13.4 | 0.08 | 0.03 | 25.03 | 15.94 | 50.15 | 49.84 |
| जनसंख्या विभाजन का प्रतिशत | 25.68 | | 21.14 | | 0.06 | | 53.12 | | 100 | |

| पंचायत समिति (प्रमुख क्षेत्र पंचायत) | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| संख्या | चुने गए प्रतिनिधियों की संख्या | | | | | | | | | |
| | सामान्य (302) | | अनु. जाति (177) | | अनु. जनजाति (2) | | पिछड़ी जातियाँ (335) | | कुल (816) | |
| | महिला | पुरुष | महिला | पुरुष | महिला | पुरुष | महिला | पुरुष | महिला | पुरुष |
| 820 | 115 | 187 | 101 | 76 | 2 | 0 | 196 | 139 | 414 | 402 |
| चयनित प्रतिनिधियों का प्रतिशत | 14.09 | 22.92 | 12.38 | 9.31 | 0.25 | 0 | 24.01 | 17.03 | 50.73 | 49.26 |
| जनसंख्या विभाजन का प्रतिशत | 25.68 | | 21.14 | | 0.06 | | 53.12 | | 100 | |

| जिला परिषद (अध्यक्ष जिला पंचायत) | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| संख्या | चुने गए प्रतिनिधियों की संख्या | | | | | | | | | |
| | सामान्य (15) | | अनु. जाति (16) | | अनु. जनजाति (0) | | पिछड़ी जातियाँ (39) | | कुल (70) | |
| | महिला | पुरुष | महिला | पुरुष | महिला | पुरुष | महिला | पुरुष | महिला | पुरुष |
| 70 | 11 | 4 | 12 | 4 | 0 | 0 | 30 | 9 | 53 | 17 |
| चयनित प्रतिनिधियों का प्रतिशत | 15.71 | 5.71 | 17.14 | 5.71 | 0 | 0 | 42.86 | 12.86 | 75.71 | 24.29 |
| जनसंख्या विभाजन का प्रतिशत | 25.68 | | 21.14 | | 0.06 | | 53.12 | | 100 | |

अनुसूचित जाति के सदस्य (दलित महिलाओं समेत) तीनों स्तरों पर बड़ी संख्या में चुने गए, जो कि राज्य में उनकी जनसंख्या के आनुपातिक प्रतिनिधित्व से ज़्यादा है। यद्यपि वे अध्यक्ष और सदस्यों के रूप में बड़ी संख्या में चुने गए हैं परंतु अनैतिक तत्वों द्वारा उनके पदों और अधिकारों के अपहृत होने की आशंका अभी भी बड़े स्तर पर दिखाई देती है।

उच्च प्रभावशाली जातियों द्वारा पुनर्स्थापित परोक्ष प्रतिनिधित्व (किसी की ओर से प्रतिनिधित्व करना) पहले से मौजूद उ.प्र. पंचायती राज अधिनियम की धाराओं के अलावा सारी स्थितियों को और अधिक समस्याजनक बनाता है। साथ ही यहाँ चुने हुए ग्राम सभा, पंचायत प्रमुखों जो कि दलित समुदाय से हैं को पद से हटा देने की बढ़ती हुई प्रवृत्ति भी दिखाई देती है। यह कभी–कभी जिला प्रशासन के अधिकारियों की मिलीभगत से झूठी शिकायतें तैयार करने के द्वारा किया जाता है। इस प्रकार के आक्रमण दलितों को उनके मूलभूत लोकतांत्रिक अधिकारों से वंचित करते हैं और पंचायती राज व्यवस्था की क्षमतावर्द्धन की संभावना का उपहास करते हैं।

उ.प्र. उन राज्यों में से एक है जिनमें दो बच्चों का प्रतिमान (5) लागू है। पंचायती राज व्यवस्था में दलित महिलाओं की राजनैतिक सहभागिता पर दो बच्चों के प्रतिमान (जहां कि यह प्रतिमान कई वर्षों से अस्तित्व में है) के क्रियान्वयन पर किया गया सर्वेक्षण (6) दिखाता है कि हजारों महिला पंचायत प्रतिनिधियों ने तीसरा बच्चा होने पर अपनी नौकरी खो दी, क्योंकि राज्य सरकार की नीति के अनुसार केवल वह व्यक्ति पंचायत चुनाव के लिए खड़ा हो सकता है जिसके दो या दो से कम बच्चे हों। इससे सबसे ज्यादा दलित महिलाऐं प्रभावित हुई हैं क्योंकि यह समाज का वह भाग है जो सबसे ज़्यादा असुरक्षित है और जिसकी पर्याप्त गर्भनिरोधक उपायों व प्रजनन संबंधी स्वास्थ्य देखरेख तक पहुँच कम है, साथ ही जिसका उच्च शिशु जन्मदर और बच्चों की अधिक संख्या का काफी लम्बा अनुभव है। परिणाम स्वरूप जो सत्ता में बने हुए हैं वे परिवार नियोजन तक बेहतर पहुँच वालों के सापेक्ष समृद्ध हैं।

ग्राम पंचायत सतर पर दो तिहाई बहुमत से अविश्वास प्रस्ताव पास करना आवश्यक होता है, अन्य स्तरों पर एक सामान्य बहुमत काफ़ी होता है। यह अनैतिक आचरण और अस्थिरता को स्थान प्रदान करता है, ख़ासकर पंचायत स्तर पर सदस्यता से जो कि बहुत छोटा स्तर है। प्रभावी उच्च जाति के लोग, जो कि दलितों द्वारा कार्यालय के क्रियान्वयन को पसंद नहीं करते, एक अविश्वास प्रस्ताव के बाद उन्हें पदच्युत कर देते हैं। यह सामाजिक विवशता के अंतर्गत अपने राजनैतिक अधिकारों को प्राप्त करने में दलितों की तकलीफ और अपमान का एक और ऊँचे दर्जे का उदाहरण है। कई स्थानों पर तो बाकायदा चुने जाने के बाद भी दलित अपने अधिकार और पद, जिसके कि वे पात्र हैं, प्राप्त नहीं कर पाते और अविश्वास प्रस्ताव दलितों से उनके अधिकार छीनने का उच्च जाति द्वारा निकाला गया सबसे अच्छा रास्ता है। जब कभी भी दलित चुने गए हैं उनके खिलाफ हिंसा के कई दौर गाँवों में ईश्वर की पूजा के अधिकार को रद्द करने के लिए सामाजिक बहिष्कार से प्रारंभ होकर अंततः हिंसा/उत्पीड़न के कई स्तरों की ओर अभिमुख होने के रूप में सामने आए हैं।

पंचायत में मुख्यतः दो तरह से भेदभाव किया जाता है। एक– दलितों को पंचायत की कार्यवाही, विकास कार्यों, योजनाओं से दूर रखा जाता है। दूसरा– जहाँ कहीं भी आरक्षण के बल पर दलित सत्ता में हैं, वे निशाना बनाए जाते हैं और एक समय के बाद उनका पद अमान्य और रद्द घोषित कर दिया जाता है। पंचायतों में दलित बस्तियों में विकास कार्य भी जाति पहचान का शिकार होते हैं और उन्हें ठीक ढंग से पूरा नहीं किया जाता और न ही इनके योजना निर्माण और क्रियान्वयन प्रक्रिया में दलितों को शामिल किया जाता है।

*बनारस जिले के हरूंआ विकासखण्ड के ग्राम वाजीदपुर के निवासी श्री प्रेमनारायण, जो कि चमार समुदाय के सदस्य हैं, सितम्बर 2005 में ग्राम प्रधान चुने गए थे और 8 सितम्बर 2005 (7) को पंचायत समिति का गठन हुआ था। निर्गामी समिति द्वारा श्री नारायण को ग्राम कार्यालय के कार्य रजिस्टर, सम्पत्ति रजिस्टर जो कि गाँव के प्रबंधन*

*से संबंधित हैं आदि कई दस्तावेज़ नहीं सौंपे गए। साथ ही दैनिक रजिस्टर संभालने को नकारने के लिए निर्गामी समिति ने चलायमान सम्पत्ति/वस्तुओं को सौंपने से इन्कार करते हुए कार्यालय में ही रखा। यहाँ तक कि श्री नारायण को उच्च जाति के सदस्यों द्वारा कई दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने के लिए भी बाध्य किया गया। इस सबके परिणाम स्वरूप  वे ग्राम प्रधान के रूप में अपने कर्तव्यों के निर्वाह में भी असमर्थ रहे।*

*ऐसा ही एक और प्रकरण श्रीमती मुनिया देवी (जिला बनारस, विकासखण्ड हरूंआ, ग्राम कोइराजपुर) का है, जो कि एक दलित (चमार समुदाय) महिला ग्राम प्रधान हैं। वे भी सितम्बर 2005 से ही उच्च जाति के हिन्दुओं द्वारा किये जाने वाले जातिगत भेदभाव के कारण अपने कार्यालयीन कर्तव्यों का निर्वाह करने में असमर्थ रही हैं। यह भी ग़ौरतलब है कि जब उन्होंने गाँव की भृष्ट जन वितरण व्यवस्था ;च्वैद्ध की दूकान जो एक उच्च जाति के व्यक्ति द्वारा संचालित है के विरोध में अपनी आधिकारिक आवाज़ उठाई तो उन्हें धमकाया गया और हमला किया गया। (8)*

यह एक–दो प्रकरण नहीं हैं, ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं जहाँ दलित पी.आर.आई. प्रतिनिधियों के साथ ऐसा व्यवहार किया गया।

# अध्याय–4

# जीवन व सुरक्षा के सवाल

भारत का संविधान हमें समानता का अधिकार देता है। संविधान के अनुच्छेद 14 व 15 के तहत जाति, धर्म, सम्प्रदाय व लिंग के आधार पर भेदभाव किये बिना सभी नागरिक कानूनन बराबर हैं। इसी तरह अनुच्छेद 21 हमें स्वतंत्र व गौरवपूर्ण ढंग से जीने का अधिकार प्रदान करता है। इन तमाम अधिकारों के बावजूद दलित समुदायों को समाज में व्याप्त जातिप्रथा के कारण बराबरी या सम्मानपूर्ण दर्जा नहीं मिल पा रहा है। इसके विपरीत उन्हें आज भी अत्याचार और हिंसा का सामना करना पड़ता है। इससे उनका जीवन और अस्तित्व दोनों दाँव पर लगे हुए हैं।

दलित समुदायों को अक्सर सामूहिक हिंसा का सामना करना पड़ता है। ऐसा ज़रूरी नहीं है कि हिंसा की वजह कोई एक व्यक्ति हो। यह स्थिति पूरे देश में हमेशा से रही है परंतु आजादी के बाद स्थिति ने और भी गंभीर रूप धारण कर लिया है। जिस तादाद में हिंसा, क्षति व शोषण का सामना दलित समुदाय के अस्तित्व, व्यक्तित्व एवं सम्पत्ति को करना पड़ता है वह बेहद चिंताजनक है। शासन तंत्र भी ऐसे मौकों पर सुरक्षा प्रदान करने के स्थान पर चुप्पी साधे रहता है और कभी–कभी तो ख़ुद आग में घी डालने का काम करता है। ऐसे में न्याय और अधिकारों की स्थिति का अनुमान लगाना ज्यादा मुश्किल नहीं होगा।

दलित समुदायों के खिलाफ इस सामूहिक हिंसा को समझने के लिए पहले हमें सामाजिक व्यवस्था, इसकी उत्पत्ति, शासन तंत्र का चरित्र, समाज में व्याप्त आर्थिक–सामाजिक संदर्भ को समझने की आवश्यकता है। अनुसूचित जाति/जनजाति अत्याचार निरोधक अधिनियम में दोषी को 6 माह से लेकर 5 वर्ष तक की सजा व जुर्माना का प्रावधान होने के बावजूद यह कानून पीड़ित को न्याय दिला पाने और दोषी को दण्ड देने में नाकामयाब रहा है। ऐसे तमाम कानूनों के बावजूद जातिगत हिंसा व उत्पीड़न दलित समुदायों के जीवन का अभिन्न हिस्सा बन गए हैं। अगर आँकड़ों की बात करें तो हर वर्ष इनमें वृद्धि ही हो रही है। आँकड़ों की बात करते वक्त यह समझना ज़रूरी है कि अधिकांश प्रकरण तो दर्ज ही नहीं हो पाते हैं। एक सामान्य अनुमान के अनुसार दलित उत्पीड़न की संख्या दर्ज किये गए प्रकरणों से कम से कम दस गुना होगी। (तेलतुम्बे, 1996)

दलित उत्पीड़न के क्षेत्र में उत्तर प्रदेश की स्थिति सबसे ख़राब है। पूरे देश के एक चौथाई से अधिक (25.4 प्रतिशत) दलितों के खिलाफ अपराध यहीं दर्ज हैं (क्राइम इन इण्डिया, 1998)। अगर अपराध की स्थिति की और अच्छे से पड़ताल की जाए तो यह पता चलता है कि सबसे गम्भीर किस्म के अपराध भी उत्तर प्रदेश में ही ज्यादा है। इसमें मुख्य हैं –

हत्या – 50.2 प्रतिशत

अपहरण – 54.9 प्रतिशत

डकैती – 64.2 प्रतिशत

चोरी – 44.0 प्रतिशत

आगजनी – 43.4 प्रतिशत

हिंसा – 20.5 प्रतिशत

यहाँ तक कि SC/ST (POA) Act के तहत 36.8 प्रतिशत मामले भी यहीं दर्ज हुए हैं।

ज़हीर (2007) की एक रिपोर्ट के अनुसार कम से कम :

प्रत्येक सप्ताह 13 दिलतों की हत्या

प्रत्येक सप्ताह 5 दलित परिवारों के साथ आगज़नी

प्रत्येक सप्ताह 6 दलितों का अपहरण

प्रतिदिन 3 दलित महिलाओं का बलात्कार

प्रतिदिन 11 दलितों के साथ मार–पीट की जाती है।

एक अनुमान के अनुसार (ज़हीर, 2007) हर 18 मिनट में दलितों के ख़िलाफ़ एक अपराध की घटना घटती है।

उत्तर प्रदेश में दलित उत्पीड़न के करीब 50,000 मामले ऐसे हैं जिन पर अभी तक न्यायालय ने कोई निर्णय नहीं दिया है। 2002 से लेकर अभी तक मात्र 4 मामलों का फैसला हुआ है (गाँधी, 2007)। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि ग्रामीण इलाकों में दलितों को ऐसे प्रकरण दर्ज नहीं करने के लिए पुलिस द्वारा मजबूर किया जाता है। यहाँ तक कि अनुसूचित जाति आयोग के अध्यक्ष ने भी अधिकारियों की आलोचना करते हुए यह कहा है कि वे दलित समुदायों की समस्याओं हल करने में असफल रहे हैं।

निम्नलिखित दो घटनाओं से यह स्पष्ट होता है कि किस प्रकार और किन वजहों से दलितों पर हमला किया जाता है –

घटना–1 : लखनऊ से मात्र 22 किलोमीटर की दूरी पर स्थित बाराबंकी जिले में 24 अक्टूबर 2000 को दलित समुदाय के 6 लोगों पर तेज़ाब फेंक कर हमला किया जाता है। दबंग ठाकुर जाति के लोगों ने ऐसा इसलिए किया क्योंकि पास के एक तालाब में मछली पकड़ने का टेंडर उनको न मिलकर दलितों को मिल गया। ठाकुर समाज ने क्रोध में आकर दलितों पर तेज़ाब फेंककर यह सबक सिखा दिया कि ठाकुरों को चुनौती देने का क्या परिणाम होता है। (स्रोतः लुई, 2003)

घटना–2 : वाराणसी जिले के हसनपुर गाँव में पाँच दलितों की मार–मारकर हत्या कर दी गई क्योंकि उन्होंने राजपूतों का कहा नहीं माना और राजपूत के ख़िलाफ़ एफ.आई.आर. दर्ज कर दी। गाँव के 'अछूतों' को इस 'अपराध' के लिए राजपूतों ने मौत की सजा सुना दी। (स्रोतः लुई, 2003)

इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि दलितों के ख़िलाफ़ हिंसा या उप्पीड़न की वजह कोई ख़ास नहीं होती बल्कि बेहद मामूली होती है। कई बार ऐसा इसलिए किया जाता है ताकि दलित समुदाय दबंग जातियों के ख़िलाफ़ अपनी आवाज़ न उठा पाए। प्रशासन का नज़रिया काफी दुःखद रहा है। एफ.आई.आर. दर्ज करने के लिए भी दलितों को जोख़िम उठाना पड़ता है, सुनवाई तो बहुत दूर की बात है। उत्पीड़न के इस खेल में पुलिस कभी भी पीछे नहीं रहती। प्रकरण दर्ज न हो इसके लिए तमाम हथकण्डे अपनाए जाते हैं। किसी प्रकार अगर प्रकरण दर्ज हो भी जाता है तो यह महत्वपूर्ण होता है कि कौन उसकी जाँच–पड़ताल व सुनवाई कर रहा है। (सुजाता और वर्मा, 2006). उत्तर प्रदेश में जहाँ कि दलितों की मसीहा सुश्री मायावती जी मुख्यमंत्री हैं वहाँ भी दलित उत्पीड़न की घटनाऐं आम हैं।

## दलितों पर अत्याचार की घटनाऐं

(1) कानपुर के उपनगर बिल्हौर में रहने वाले गुड्डू रैदास बताते हैं कि आज भी वे कितने असुरक्षित हैं। अक्टूबर 2007 में कुछ प्रभावशाली भू–स्वामियों ने गुड्डू को जिन्दा जलाने की कोशिश की और पुलिस द्वारा भी तब मामला दर्ज किया गया जबकि मीडिया ने इस घटना को प्रमुखता से प्रदर्शित किया। गुड्डू

का कहना है ''मुझे शक्तिशाली ग्रामीणों द्वारा लगातार धमकियाँ मिलती रही थीं लेकिन पुलिस ने कोई कदम नहीं उठाया और जब कदम उठाया गया तब तक मैं लगभग जल चुका था।'' वह अभी भी अपने जीवन को खतरे से भयग्रस्त है। वह शिकायत करता है ''मैंने पुलिस सुरक्षा के लिए मांग की है परन्तु किसी ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की।''

(2) 20 दिसम्बर 2007 को उन्नाव जिले के फत्तेपुर चौरासी गाँव में 55 वर्षीय एक दलित ने उसी गाँव के कुछ उच्च जाति के गुंडों द्वारा अपनी दो पुत्रवधुओं के बलात्कार की कोशिश के दौरान पुत्रवधुओं के बचाव के प्रयास में अपनी जान गंवा दी। इस बहादुर व्यक्ति ने अपनी जान खो दी पर अपनी पुत्रवधुओं की इज्जत बचा ली।

(3) 27 दिसम्बर 2007 को उन्नाव जिले के पुरवा में एक दलित युवक की तब हत्या कर दी गई जब वह उसी गाँव के दो उच्च जाति के युवकों द्वारा बलात्कार की घटना के दौरान अपनी पत्नी को बचाने की कोशिश कर रहा था।

(4) 2 जनवरी को खाड़ी प्रदेश में रहने वाले एक दलित युवक अमृत लाल, जो कि नववर्ष के अवसर उन्नाव जिले के मौरवा में अपनी पत्नी और परिवार के बाकी सदस्यों से मिलने आया था, का अपहरण कर लिया गया और बाद में उसकी हत्या कर दी गई।

(5) 5 जनवरी 2008 को कानपुर के प्रमुख क्षेत्र गोविन्दनगर के रविन्द्रपुरम इलाके में एक 30 वर्षीय दलित महिला बलात्कार की शिकार हुई परंतु जो प्रमुख अपराधी हैं वे अभी भी फरार हैं।

(6) कल्याणपुर के गंगापुर गाँव में 8 जनवरी 2008 को मंदिर में प्रवेश के लिए एक दलित युवक को पुजारी द्वारा प्रताड़ित किया गया, जो कि दलितों की पहुँच का पुनर्स्मरण है।

(7) कानपुर देहात जिले के एक शासकीय अस्पताल में रिश्वत न देने के कारण दो गर्भवती महिलाओं को अस्पताल से बाहर फेंक दिये जाने के बाद उनकी मृत्यु की मन का झकझोर देने वाली घटना पुनः यह साबित करती है कि निचले स्तर के कर्मचारी अभी भी मुख्यमंत्री की बहुप्रशंसित प्राथमिकताओं के प्रति असंवेदनशील हैं।

(स्रोतः Atrocities against Dalits on rise, 10 जनवरी 2008, अखिलेश कुमार सिंह)

मुख्यमंत्री कार्यालय से जारी एक प्रेस विज्ञप्ति के अनुसार उत्तर प्रदेश राज्य सरकार ने राज्य से अपराध, अन्याय, आतंक व भृष्टाचार दूर कर विकास का वातावरण विकसित करने को अपना प्राथमिक उद्देश्य बताया है। हालांकि वर्ष 2005–2006 में जहाँ दलित उत्पीड़न के मामलों की संख्या में वृद्धि हुई हैं वहीं 2006–2007 में ऐसी घटनाऐं कुछ हद तक कम हुई हैं। राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग के अध्यक्ष श्री बूटा सिंह का कहना है कि मायावती जी के कार्यकाल में भी दलितों की स्थिति में कोई सुधार नहीं आ पाया है। अर्थात् यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि एक तरफ तो देश कई मामलों में तरक्की कर रहा है परंतु जब सदियों से पीड़ित एवं शोषित दलित समुदाय की बात आती है तो उनकी स्थिति में कोई सुधार नहीं दिखता।

# अध्याय–5
# दलित और मूलभूत आवश्यकताऐं

दलित सिर्फ एक सामाजिक–सांस्कृतिक समूह का ही प्रतिनिधित्व नहीं करते बल्कि अक्सर एक आर्थिक समूह का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। शोधकार्यों ने यह स्पष्ट किया है कि भुखमरी और बीमारियों के कारण मरने वाली भारतीय जनता का 90 प्रतिशत दलित हैं। कठोर जाति नियम भी निचली जातियों को शिक्षा और व्यवसाय संबंधी बदलावों से रोकते हैं।

अधिकांश ग्रामीण इलाकों में 90 से 99 प्रतिशत दलित महिलाऐं अशिक्षित हैं, साथ ही वे वैश्यावृत्ति करने वालों के बड़े हिस्से की रचना करती हैं। ;क्नददए 1993द्ध ण यह आंकड़े इस बात की ओर इशारा करते हैं कि अस्पृश्यता और ग़रीबी प्रायः एक–दूसरे को सहारा देती हैं। उत्तर प्रदेश के संदर्भ में मूलभूत मानव आवश्यकताओं पर दलितों के अधिकार और वास्तविक स्थिति पर चर्चा/बहस अभी प्रकाश में है।

## दलित और आजीविका का अधिकार

दलितों का आजीविका का अधिकार Universal Declaration of Human Rights में निर्धारित किए गए आधारभूत मानवाधिकारों और भारतीय संविधान में लोगों के धर्म, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी का भी ध्यान न रखते हुए, दिये गए मूलभूत अधिकारों से जुड़ा है तथा भारतीय संविधान के भाग चार में सुरक्षित रखे गए राज्य योजनाओं के दिशा–निर्देशक सिद्धांत इसे आवश्यक बनाते हैं कि राज्य आजीविका के अधिकार का वास्तविकता में बदलने के लिए गंभीर कदम उठाए और कार्य–प्रणाली/व्यवस्था निर्मित करे।

तालिका 5.1 कुछ महत्वपूर्ण आजीविका के अधिकारों की झलक प्रस्तुत करती है, जो कि हर व्यक्ति (जिनमें दलित भी शामिल हैं) के लिए हैं –

**तालिका 5.1 : दलितों के आजीविका अधिकार**

- जबरन श्रम (बेगारी) का निषेध (ICD.FR, 23)
- आजीविका के पर्याप्त साधनों के अधिकार की सुनिश्चितता (IC.DP, 39-A)
- प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं व अपने परिवार के लिए भोजन, वस्त्र, आवास, चिकित्सकीय सुविधा एवं आवश्यक सामाजिक सुविधाओं सहित स्वस्थ्य व बेहतर स्थितियों के लिए यथेष्ट गुणवत्तापूर्ण जीवन जीने का अधिकार है (UDHR:Art,25)
- भारतीय संविधान (DP, 39-c; 39-f; 41, 47) और अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों (UDHR:Art,25; ICESR: Art. 12; ICERD: Art. 5) में दिये गये अन्य प्रावधान

देखा जाए तो दलितों के अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय ढ़ाँचे/व्यवस्थओं की कमी नहीं है परन्तु वास्तविक स्थिति और इनकी गंभीरता क्या है इसे जानने की आवश्यकता है। ग़रीबी रेखा के नीचे

रहने वाली जनसंख्या का॰तिशत 1973–74 में 55 प्रतिशत से घटकर 1993–94 में 36 प्रतिशत हुआ। (CSO, 1999). ग़रीबी के साथ वर्तमान में निर्धारित किया गया प्रतिव्यक्ति माहाना ख़र्च ग्रामीण क्षेत्रों में 327.56 रु. व शहरी क्षेत्रों में 454.11 रु. है। NSSO जानकारी के 61वें चरण के साक्ष्य यह स्पष्ट करते हैं कि 1999–2000 में 26.1 प्रतिशत की तुलना में ग़रीबी रेखा का प्रसार 2004–2005 में घटकर 22.0 प्रतिशत हुआ है। (वित्त मंत्रालय, 2007, राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण तृत्तीय चरण, 2007 द्वारा प्रमाणित). राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–3 यह भी स्पष्ट करता है कि भारत में लगभग एक चौथाई (27 प्रतिशत) परिवारों के पास बी.पी.एल. कार्ड हैं। ग्रामीण इलाकों में बी.पी.एल. कार्ड धारक परिवार (33 प्रतिशत) शहरी इलाकों के बी.पी.एल. कार्डधारक परिवारों (16 प्रतिशत) के अनुपात में दोगुने हैं। 2004–2005 की NSSO रिपोर्ट यह भी स्पष्ट करती है कि बी.पी.एल. जनसंख्या के राष्ट्रीय औसत 22 प्रतिशत के सापेक्ष ग्रामीण इलाकों में 36.8 प्रतिशत दलित ग़रीबी रेखा के नीचे रहते हैं। 1991 के आंकड़े यह भी दर्शाते हैं कि अविभाजित उ.प्र. में कुल ग्रामीण परिवारों में से 36.91 प्रतिशत परिवार ग़रीबी रेखा के नीचे थे। वर्तमान उ.प्र. में अनुसूचित जाति के बी.पी.एल. परिवार 44 प्रतिशत हैं। अलग–अलग संभागों में अनुसूचित जाति के बी.पी.एल. परिवारों की स्पष्ट संख्या के मामले में लखनऊ में यह संख्या सबसे अधिक 6,47,099 है, जिसके बाद क्रमशः फ़ैज़ाबाद (304067), इलाहाबाद (287591), बनारस (235409) और मिर्ज़ापुर (215934) का स्थान है। कुल बी.पी.एल. परिवारों में अनुसूचित जाति के बी.पी.एल. परिवारों के प्रतिशत के संदर्भ में यह स्थिति बदल जाती है। कुल बी.पी.एल. परिवारों में अनुसूचित जाति के बीपी.एल. परिवारों के प्रतिशत की दृष्टि से घटते क्रम में रखने पर पाँच संभाग क्रमशः मिर्ज़ापुर (61.39 प्रतिशत), झाँसी (53.95 प्रतिशत), बाँदा (51.30 प्रतिशत), बनारस (50.85 प्रतिशत) और लखनऊ (50.19 प्रतिशत) हैं। इसी प्रकार जिला स्तर पर घटते क्रम में यह प्रतिशत इन पाँच जिलों मिर्ज़ापुर, कौशाम्बी, ललितपुर, सोनभद्र और आज़मगढ़ में क्रमशः 64.84, 62.43, 61.97, 60.51 और 58.29 प्रतिशत है। (ग्रामीण विकास विभाग, उ.प्र. सरकार, 1991).

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अनुसूचित जाति के बी.पी.एल. परिवारों का प्रतिशत बहुत अधिक है। साथ ही पूर्वी और दक्षिण–मध्य उत्तर प्रदेश के संभागों (जैसे कि मिर्ज़ापुर, झाँसी और बाँदा) एवं जिलों (जैसे कि मिर्ज़ापुर, कौशाम्बी और ललितपुर) में अनुसूचित जाति के बी.पी.एल. परिवारों का घनत्व सर्वाधिक है।

## मूलभूत आवास व्यवस्था : स्नानगृह, शौचालय और जल–निकास व्यवस्था की सुविधाऐं

व्यक्तिगत स्तर पर या परिवार में मूलभूत स्वच्छता सुविधाऐं उस स्थिति को प्रदर्शित करती हैं जिसमें कि लोग जीवन से संघर्ष कर रहे हैं। भारत की नवीनतम जनगणना (जनगणना 2001) में घरों में स्नानगृह की उपलब्धता, शौचालय के प्रकार और अपशिष्ट जल के निकास के लिए निकास व्यवस्था की उपलब्धता की जानकारी एकत्रित की गई। पूरे भारत में 23 प्रतिशत अनुसूचित जाति परिवारों के घर में स्नानगृह की सुविधा है जबकि उत्तर प्रदेश के संदर्भ में सिर्फ़ 16 प्रतिशत परिवारों में। ग्रामीण और शहरी विभाजन के संदर्भ में पूरे भारत में शहरी इलाकों में 51 प्रतिशत और ग्रामीण इलाकों में 14 प्रतिशत अनुसूचित जाति परिवारों के घरों में स्नानगृह की सुविधा है, जबकि उत्तर प्रदेश में शहरी इलाकों में केवल 44 प्रतिशत और ग्रामीण इलाकों में 12 प्रतिशत अनुसूचित जाति परिवारों के घरों में स्नानगृह की सुविधा है।

### तलिका 5.2 : उत्तरप्रदेश व भारत मेंघरों में स्नानगृह, शौचालय के प्रकार और अपशिष्ट जल निकास के प्रकार के आधार पर अनुसूचित जाति के घरों की संख्या

| राज्य/ देश | कुल/ ग्रामीण / शहरी | घरों की कुल संख्या | घरों की संख्या जिनमें स्नानगृह की सुविधा है | घरों में शौचालय का प्रकार | | | | अपशिष्ट जल निर्गमन नाली का प्रकार | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | | गड्ढायुक्त | पानीयुक्त | अन्य | मौजूद नहीं | बंद | खुला | मौजूद नहीं |
| उत्तरप्रदेश | कुल | 6471030 | 1018582 | 543123 | 195151 | 483883 | 5248873 | 332124 | 3844504 | 2294402 |
| | ग्रामीण | 5643601 | 658022 | 400951 | 43523 | 306737 | 4892390 | 188755 | 32660883 | 2193963 |
| | शहरी | 827429 | 360560 | 142172 | 151628 | 177146 | 356483 | 143369 | 583621 | 100439 |
| भारत | कुल | 35750343 | 7970505 | 3490086 | 3156476 | 1823041 | 27280740 | 2523402 | 12809963 | 20416978 |
| | ग्रामीण | 27941787 | 3956648 | 2336633 | 953625 | 927258 | 23724271 | 662467 | 9136973 | 18142347 |
| | शहरी | 7808556 | 4013857 | 1153453 | 2202851 | 895783 | 3556469 | 1860935 | 3672990 | 2274631 |

स्रोतः भारत की जनगणना, 2001

तलिका 4.1 यह जानकारी भी प्रदान करती है कि सम्पूर्ण भारत के स्तर पर 76 प्रतिशत अनुसूचित जाति परिवारों में शौचालय की सुविधा नहीं है और ग्रामीण इलाकों का प्रतिशत इससे भी आगे (85 प्रतिशत) है। उत्तर प्रदेश में स्थिति और भी बदतर है, राज्य में 81 प्रतिशत अनुसूचित जाति परिवारों में शौचालय की सुविधा नहीं है जिसमें से ग्रामीण क्षेत्रों के मामले में यह बढ़कर 87 प्रतिशत हो जाता है। सम्पूर्ण भारत में नही ंके बराबर अनुसूचित परिवारों (10 प्रतिशत) में पक्के शौचालय हैं जो कि उत्तर प्रदेश में और भी कम 8 प्रतिशत हैं। ठीक इसी प्रकार देशव्यापी स्तर पर 57 प्रतिशत अनुसूचित जाति परिवारों में निकास सुविधा नहीं है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में यह प्रतिशत 65 प्रतिशत है। राष्ट्रीय औसत की तुलना में उत्तर प्रदेश के आंकड़े थोड़े से बेहतर हैं। उत्तर प्रदेश में निकास सुविधा से वंचित अनुसूचित जाति परिवारों का प्रतिशत 35 प्रतिशत है जो कि ग्रामीण क्षेत्रों में थोड़ा सा ज्यादा (39 प्रतिशत) है। आश्चर्यजनक रू‍ से बहुत ही नगण्य अनुसूचित जाति परिवारों के घरों में बंद निकास व्यवस्था है, जैसे– भारत : 7 प्रतिशत, ग्रामीण भारत : 2 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश : 5 प्रतिशत, ग्रामीण उत्तर प्रदेश : 3 प्रतिशत। इस प्रकार यह पूरी तरह स्पष्ट है कि राष्ट्रीय और प्रादेशिक दोनों ही स्तरों पर अनुसूचित जाति परिवारों में मूलभूत स्वच्छता सुविधाओं की उपलब्धता असाधारण रूप से कम और बहुत ही अपर्याप्त है।

## आवास का प्रकार, पेयजल सुविधा, बिजली और परिसम्पत्ति

14 प्रतिशत परिवार कच्चे मकानों में, 40 प्रतिशत अर्द्धपक्के मकानों में तथा बाकी 46 प्रतिशत परिवार पक्के मकानों में रहते हैं। शहरी क्षेत्रों में एक बड़ा हिस्सा (81 प्रतिशत) पक्के मकानों में रहता है, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों का बड़ा हिस्सा (52 प्रतिशत) अर्द्धपक्के मकानों में रहता है। (राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–3ए 2007).

अधिकांश परिवारों (88 प्रतिशत) की पेयजल के अच्छे स्रोतों तक पहुँच है, जो कि शहरी इलाकों में और भी अच्छी है। शहरी निवासियों के लिये पेयजल का सबसे आम स्रोत नलके का पानी है। 71 प्रतिशत लोगों को या तो उनके रिहायशी इलाकों में ही पाइप लाइन द्वारा पेयजल प्राप्त होता है या फिर वे सार्वजनिक नलके का उपयोग करते हैं। जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत ही कम केवल 28 प्रतिशत परिवारों की पाइप लाइन के जल तक पहुँच है। ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश जनता (53 प्रतिशत) ट्यूबवैल या कुँए इत्यादि से पेयजल प्राप्त करती है। (राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–3, 2007). भारत में राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–2 में दिये गए 60 प्रतिशत से ज्यादा, दो तिहाई परिवारों (68 प्रतिशत) को बिजली प्राप्त है। फिर भी निवास स्थान के संदर्भ में बिजली प्राप्त परिवारों का अनुपात बहुत भिन्न है। ग्रामीण क्षेत्रों में 56 प्रतिशत के मुकाबले शहरी क्षेत्रों में 93 प्रतिशत परिवारों की बिजली तक पहुँत है।

उत्तर प्रदेश में वर्तमान मायावती सरकार ने अनुसूचित जाति/जनजाति के लोगों को सुरक्षित स्थान/आश्रय प्रदान करने की दृष्टि से दो लाख मकानों के निर्माण का निर्णय लिया है, जिसकी लागत 500 करोड़ रु. है। (CM Office Release, www.upgov.nic.in/news11.asp?idn=2641).

# अध्याय–6
# दलित और जीवन की गुणवत्ता : विपरीत लक्षणों की कड़ी

पूर्व अध्याय में मूलभूत मानव आवश्यकताओं की उपलब्धता में दलितों की दशा पर प्रकाश डाला गया है। इसलिए जब दलितों के जीवन स्तर और इन आवश्यकताओं तक उनकी पहुँच के बारे में बात की जाती है तो ऐसा महसूस होता है कि हम ऐसी स्थिति पर विचार–विमर्श कर रहे हैं जिस पर कि नहीं किया जा सकता, जो एक साथ नहीं सकती और जो स्वयं विरोधाभासी है। संक्षिप्त में यह कहा जा सकता है कि दलित तथा उनकी जीवन शैली आपस में विपरीत लक्षणों की कड़ी है। जीवन की गुणवत्ता का अर्थ है भूमि और श्रम पर अधिकार समेत उन्नत शिक्षा, अच्छा स्वास्थ्य और उपयुक्त रोज़गार। फिर भी समकालीन भारत में शिक्षा, स्वास्थ्य और रोज़गार जैसी सेवाओं, जिनके बिना प्रत्येक जीवन दाँव पर लगा है, तक पहुँच बहुत कम हो सकी है। आगामी पैरा शिक्षा, स्वास्थ्य और रोज़गार के क्षेत्र में दलितों की स्थिति पर एक समीक्षा है।

## शिक्षा : नामांकन, निरंतरता और स्कूल छोड़ना

समकालीन तकनीकि संचालित विश्व और ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था में शिक्षा और साक्षरता मनुष्य के लिए प्राणवायु के समान है। शिक्षा व साक्षरता का निम्न स्तर राष्ट्रीय विकास में बाधक और मानवाधिकारों के प्रति हिंसक है।

संविधान को अपनाते समय भारत राज्य ने राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों के अनुच्छेद 45 के अंतर्गत प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए स्वयं को प्रतिबद्ध किया था। अनुच्छेद 45 के अनुसार – '' राज्य इस संविधान के लागू होने से दस वर्ष के समय में हर बच्चे को, जब तक कि वह अपनी 14 वर्ष की आयु पूरी न कर ले, निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा।'' सन् 1993 में एक बहुत ही महत्वपूर्ण निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने यह घोषणा की कि शिक्षा का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 में वर्णित जीवन के अधिकारों में से एक मौलिक अधिकार है। बाद में सन् 2002 में संविधान के 86वें संशोधन के माध्यम से शिक्षा को मौलिक अधिकार के रूप में अनुमोदित किया गया जो कि संविधान में अनुच्छेद 45 में बदलाव और अनुच्छेद 21'ए' को जोड़ने के लिए किया गया। दलितों के शिक्षा के अधिकार के लिए भारत सरकार की प्रतिबद्धता अंतर्राष्ट्रीय दस्तावेजों के लिए बहुत ज़बरदस्त रूप से उपलब्ध है। प्रकोष्ठ 5.1 दलितों की शिक्षा के लिए प्रमुख प्रावधानों को रेखांकित करता है –

### प्रकोष्ठ 6.1 दलितों के शिक्षा के अधिकार

- 6 से 14 वर्ष आयुवर्ग के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा (IC:FR 21A)
- किसी सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़ी हुई जाति के नागरिकों या अनुसूचित जाति व जनजाति की प्रगति के लिए विशेष प्रावाधान का निर्माण (IC:FR 15(4))
- शिक्षा के अधिकार को सुरक्षित करने के लिए प्रभावी प्रावधान का निर्माण (IC:DP, 41)

- सभी बच्चों को , जब तक कि वे 6 वर्ष की आयु पूरी नहीं कर लेते, शिशु देखभाल एवं पूर्व प्राथमिक शिक्षा (IC:DP, 45)
- अनुसूचित जातियों की शैक्षणिक अभिरुचियों को विशिष्ट देखभाल के साथ प्रोत्साहित करना (IC:DP, 46)
- सभी को प्राथमिक और मौलिक स्तर पर निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है। माध्यमिक (तकनीकि एवं व्यावसायिक सहित), व्यावसायिक और उच्चतर शिक्षा सभी के लिए उपलब्ध और समान रूप से पहुँच में होनी चाहिए। (UDHR:Art. 26, ICESR: Art. 13)

जनगणना 2001 देश और सभी वर्गों में साक्षरता स्तर की जानकारी प्रदान करती है और यह प्रदर्शित करती है कि देश की वर्तमान साक्षरता दर 65 प्रतिशत है। अनुसूचित जातियों के मामले में कुल साक्षरता दर 55 प्रतिशत है जो कि कुल राष्ट्रीय साक्षरता दर से 10 अंक कम है। इसके आगे ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में अनुसूचित जाति की साक्षरता दर क्रमशः 51 प्रतिशत और 68 प्रतिशत है एवं लैंगिक आधार पर यह दर पुरूषों के लिए 67 प्रतिशत व महिलाओं के लिए 42 प्रतिशत है।

56 प्रतिशत साक्षरता स्तर के साथ उत्तर प्रदेश राष्ट्रीय साक्षरता स्तर 65 प्रतिशत से काफी पीछे है। उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जातियों की कुल साक्षरता दर 56 प्रतिशत है जो अनुसूचित जाति की औसत राष्ट्रीय साक्षरता 55 प्रतिशत से बहुत कम है और कुल राष्ट्रीय व राज्य की साक्षरता दर (65 व 56 प्रतिशत) से भी। उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जाति पुरूष व महिला साक्षरता दर (60 व 31 प्रतिशत) लैंगिक आधार पर अनुसूचित जाति के राष्ट्रीय औसत (67 व 42 प्रतिशत) की तुलना में कम है। उत्तर प्रदेश में बड़ी अनुसूचित जातियों चमार और धोबी की साक्षरता दर (प्रत्येक की 49 प्रतिशत) सबसे ज्यादा है और पासी की साक्षरता दर (39 प्रतिशत) सबसे कम। (भारत की जनगणना, 2001, Rqport on Religion Data, Series-10,2005 & Gautam, 2007)

यहाँ अनुसूचित जातियों के साक्षरता स्तर को थोड़े चिंताजनक रूप में लिये जाने की आवश्यकता है। जैसे कि उत्तर प्रदेश में कुल अनुसूचित जाति साक्षरों में से 65 प्रतिशत कक्षा 8 तक या उससे नीचे की कक्षाओं तक शिक्षित हैं (इनमें प्राथमिक स्तर से नीचे शिक्षित लोगों का प्रतिशत 38 प्रतिशत है)। केवल 13 प्रतिशत 10–12वीं कक्षा तक शिक्षित है और नगण्य 3 प्रतिशत स्नातक और उससे ऊपर तक शिक्षित हैं, और इससे भी आगे बिल्कुल ही सूक्ष्मदर्शी 0.1 प्रतिशत के पास तकनीकि या ग़ैरतकनीकि डिप्लोमा है।

इस सबके बावजूद दलित बच्चों के विद्यालय छोड़ने की दर बहुत अधिक है। ''दलित बच्चों के बीच विद्यालय छोड़ने की राष्ट्रीय दर प्राथमिक स्तर पर 36.6 प्रतिशत, माध्यमिक स्तर पर 59.4 प्रतिशत और सेकेण्डरी स्तर पर 73.1 प्रतिशत है। (राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग, भारत सरकार की रपट, 2000–2001).

राष्ट्रीय शैक्षणिक शोध एवं प्रशिक्षण परिषद (NCERT) के अनुसार निःशुल्क पुस्तक योजना द्वारा केवल 54.6 प्रतिशत विद्यालय और 10 प्रतिशत दलित छात्र, निःशुल्क गणवेष योजना द्वारा 29.3 प्रतिशत विद्यालय और 4.6 प्रतिशत दलित छात्र ही अपने दायरे में लिये गए हैं। मध्यान्ह भोजन योजना द्वारा 13.9 प्रतिशत विद्यालय और 3.9 प्रतिशत दलित छात्र लाभान्वित हुए हैं। 15 वर्ष से अधिक आयु के केवल 3.4 प्रतिशत दलित पुरूष और 1 प्रतिशत दलित महिलाओं ने किसी प्रकार की सेकेण्डरी शिक्षा के बाद की शिक्षा प्राप्त की है। नई शिक्षा नीतियाँ जैसे कि निजीकरण और शिक्षा के लिये शासकीय व्यय में बड़े स्तर की कटौती ने भी दलितों को नकारात्मक/ऋणात्मक रूप से प्रभावित किया है। {http://www.ncdhr.org.in/ncdhr/campaigns/righttoeducation}

## स्वास्थ्य : उपलब्धता और सामर्थ्य

स्वास्थ्य सुविधाओं तक पहुँच और उपभोग में दलितों का बहिष्करण जाति आधारित सामाजिक बहिष्करण का एक और रूप है। आचार्य (2007) ने निम्नलिखित आधार वाक्यों पर स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच और उपभोग में दलित भेदभाव को निरूपित करने का प्रयत्न किया है –

स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच और उपभोग में दलितों का संपूर्ण बहिष्करण, भेभभावग्रस्त समूहों के लिए स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच में चुनिंदा समावेश, समय देने के संदर्भ में असमान देखभाल, अपमानजनक शब्दों और मिजाज़ का उपयोग, किसी माध्यम (मध्यस्थ) द्वारा दवा देना, सेवा प्रदाता द्वारा भेदभावग्रस्त समूहों को न छूना, कुछ निश्चित सेवाओं जैसे कि स्वास्थ्य शिविर, स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रमों आदि में प्रतिकूल या जबरन समावेश और बहिष्करण।

यह दलित बहिष्करण के वह प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप हैं जो कि स्वास्थ्य सेवाओं तक दलितों की पहुँच और उपभोग को बाधित करने का कार्य करते हैं और जिनकी परिणति दलितों के स्वास्थ्य के ख़राब आंकड़ों में हुई है। उदाहरण के लिये अदलित जनसंख्या (76) की तुलना में दलितों में शिशु जन्मदर (IMR) 83 है। इसी प्रकार 5 के नीचे जन्मदर (U5MR) दलितों और अदलितों में तुलनात्मक रूप से क्रमशः 119 और 103 है। (राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–2, 2000). नवीनतम सर्वेक्षण प्रदर्शित करता है कि IMR और U5MR की दर सम्पूर्ण भारत में तुलनात्मक रूप से 57 और 74 अर्थात् नीचे आई है परंतु दलितों में यह अभी भी 66 और 88 है (राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–3, 2007)। बच्चों के सम्पूर्ण टीकाकरण (6 जानलेवा बीमारियों से सम्पूर्ण प्रतिरक्षण) के मामले में राष्ट्रीय औसत 45.3 प्रतिशत है जो कि दलितों में और भी कम 39.7 प्रतिशत है।

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–3 यह भी प्रदर्शित करता है कि राष्ट्रीय औसत (2.7 प्रतिशत) के सापेक्ष अनुसूचित जातियों में कुल जन्म दर (TFR) 2.9 प्रतिशत है परंतु यह भी उल्लेखनीय है कि जन्म दर में यह विशाल अंतर शिक्षा और पारिवारिक सामर्थ्य के कारण है। इसके आगे देखा जाए तो जो महिलाऐं किसी अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति या अन्य पिछड़ी जातियों से नहीं हैं उनमें गर्भनिरोधकों का प्रचलन अधिक है (62 प्रतिशत)। जिसके बाद अनुसूचित जातियों की महिलाओं (55 प्रतिशत) और अन्य पिछड़ी जातियों की महिलाओं (54 प्रतिशत) का स्थान है। अनुसूचित जनजाति की महिलाओं (48 प्रतिशत) में गर्भनिरोधकों का उपयोग सबसे कम है।

## रोज़गार का प्रश्न

भारत का संविधान तीन समुदायों – अनुसूचित जाति (SC), अनुसूचित जनजाति (ST) और अन्य पिछड़ी जातियों (OBC) के सहयोग के लिए आरक्षण प्रदान करता है। कुछ दमित समुदाय आरक्षण से लाभान्वित हुए हैं जब प्रशासनिक परीक्षाओं के माध्यम से व्यक्तिगत योग्यता से वे समर्थ हो रहे हैं। अन्य समुदायों ने स्वयं को परीक्षा प्रक्रिया में अपने किसी सदस्य को योग्य ठहराने में असफल पाया हैं और अपने पहले से ही अल्प अस्तित्व को निरंतर अस्वीकार किया जाना देखते रहे हैं।

### प्रकोष्ठ 6.2 : दलितों के आरक्षण व रोज़गार के अधिकार

- अनुसूचित जातियों/जनजातियों के लिए विशेष प्रावधान (IC. FR 15-4)
- जन रोज़गार में आरक्षण (IC. FR 16-4)

- कमज़ोर वर्ग और ख़ासकर अनुसूचित जातियों/जनजातियों के शैक्षणिक व आर्थिक हितों को विशेष ध्यान देते हुए प्रोत्साहित करना (IC. DP 46)
- पुरूषों एवं महिलाओं के लिए समान कार्य का समान भुगतान सुनिश्चित करना (IC.DP 39-d)
- पुरूष और महिला नागरिकों को बराबरी से आजीविका के पर्याप्त साधन सुनिश्चित करना (IC.DP 39-a)
- पुरूष और महिलाओं के स्वास्थ्य और सामर्थ्य के बारे में सुनिश्चित करना कि उनके साथ दुर्व्यवहार नहीं हो रहा है (IC.DP 39-e)
- कार्य की मानवोचित परिस्थिति और मातृत्व सहायता प्रदान करना (IC.DP 42)
- महिलाओं की प्रतिष्ठा में अपमानजनक प्रथाओं का त्याग (IC.FD. 51 A)
- आर्थिक और सामाजिक जीवन में शिक्षा में पुरूषों के साथ लड़कियों और महिलाओं के समान अधिकार सुनिश्चित करना (CEDAW, Art. 9 & 10)

आर्थिक रूप से अधिकांश दलित आज भी अत्यधिक ग़रीब हैं। बहुत ही कम ग़रीबी की सीमा से भाग निकलने और स्वयं को समृद्धि के एक न्यूनतम स्तर पर ला पाने का प्रबंध कर पाये हैं। 75 प्रतिशत से अधिक दलित कामगार अभी भी भूमि से जुड़े हुए हैं। 25 प्रतिशत हाशिये पर रह रहे छोटे किसान हैं और बाकी 50 प्रतिशत भूमिहीन मज़दूर हैं। शहरी क्षेत्रों में वे मुख्यतः असंगठित क्षेत्रों में कार्य करते हैं। 13.8 करोड़ की कुल दलित जनसंख्या में से आरक्षण के क्षेत्र में रोज़गार प्राप्त करने वाले दलितों की संख्या 11 लाख से अधिक नहीं है जो कि मात्र 0.8 प्रतिशत है (तेलतुम्बड़ेए 1996)।

उत्तर प्रदेश में 24 प्रतिशत दलित मुख्य कामगार हैं जिनके बाद 9 प्रतिशत सीमांत कामगार और 67 प्रतिशत ग़ैर–कामगार की श्रेणी में हैं। इस प्रकार दलित 33 प्रतिशत कार्य सहभागिता दर ॅ;वता च्तजपबपचंजपवद त्ंजम . ॅच्त्द्ध प्रस्तुत करते हैं। इन कामगारों (मुख्य और सीमांत) में से 42 प्रतिशत खेतिहर मज़दूर, 25 प्रतिशत कृषि कार्य करने वाले, 6 प्रतिशत पारिवारिक उद्योग में काम करने वाले और 27 प्रतिशत अन्य कार्यों की श्रेणी में काम करने वाले हैं (जनगणना, 2001)।

## भूमि और श्रम तक पहुँच और अधिकार

हिंसा और भेदभाव से पीड़ित अधिकांश दलित भूमिहीन कृषि मज़दूर हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में, जहाँ जाति भेदभाव अपने निम्नतम रूप में हैं,एक व्यक्ति की सामाजिक स्थिति और जीवन स्तर को निर्धारित करने वाली मुख्य सम्पत्ति भूमि है। दलितों का भूमि तक पहुँच का अभाव उन्हें आर्थिक रूप से असुरक्षित और उच्च व मध्यमवर्गीय जाति के भूमिस्वामियों पर निर्भर बनाता है। इस आर्थिक निर्भरता का भूमिस्वामियों द्वारा अक्सर फायदा उठाया जाता है। इसके भी आगे भूमंडलीकरण का प्रभाव – अर्थात् विश्व बैंक द्वारा अनुदान प्राप्त योजनाओं और बहुराष्ट्रीय निगमों को भूमि का बड़ा भाग दिया जाना – यह दर्शाता है कि लाखों छोटे और सीमांत कृषक, जिनमें से अधिकांश दलित हैं, अपनी भूमि खो रहे हैं या प्रतिवर्ष अपनी भूमि का हस्तांतरण कर रहे हैं। प्रकोष्ठ 6.3 दलितों के भूमि अधिकार पर प्रकाश डालता है –

## प्रकोष्ठ 6.3 : दलितों के भूमि, श्रम और पारिश्रमिक के अधिकार

- भौतिक सम्पत्ति का नियंत्रण और स्वामित्व बाँटा गया है। (IC.DP, 39-b)
- उत्पादन के साधनों और धन सम्पत्ति के केन्द्रीयकरण का कोई स्थान नहीं है। (IC.DP, 39)
- प्रत्येक व्यक्ति का अकेले और अन्य के साथ मिलकर सम्पत्ति के स्वामित्व का अधिकार है, कोई भी उसे उसकी सम्पत्ति से मनमाने ढंग से वंचित नहीं कर सकता। (UDHR, Art. 17)
- पुरूष एवं महिला दोनों के लिए समान कार्य का समान भुगतान (IC.DP, 39)
- प्रत्येक व्यक्ति को काम के अनुकूल परिस्थितियों, बेरोज़गारी के खिलाफ सुरक्षा और अपनी इच्छानुसार रोज़गार चुनने का अधिकार है। (UDHR, Art. 23; ICESCR, Art. 6 and 7)
- बेगार (जबरन श्रम या बिना भुगतान के सेवा) एवं इसी प्रकार का अन्य श्रम प्रतिबंधित है और इस अधिकार का उल्लंघन दण्डनीय है। (ICFR, 23)
- कोई भी दासता या गुलामी में नहीं रखा जाएगा। (UDHR, Art. 4)

इन प्रावधानों के बावजूद हिन्दु जातियों पर दलितों की निर्भरता का केन्द्र बिन्दु भूमिहीनता है। उत्तर प्रदेश में भूमि विभाजन के आंकड़े स्पष्ट दिखाते हैं कि 56.40 प्रतिशत भूमि स्वामित्व उच्च जातियों का का है जिसके बाद 32.27 प्रतिशत अन्य पिछड़ी जातियों का, 11.20 प्रतिशत मुस्लिम और बिल्कुल नगण्य केवल 01.13 प्रतिशत भूमि का स्वामित्व दलितों पर हैं (कपाड़िया, 2001)।

# अध्याय–7
# दलित महिलाऐं : उत्पीड़न

महिलाऐं प्राचीन समय से ही गंभीर भेदभाव के अधीन रही हैं जो कि उत्पीड़न की सीमाओं से परे फैला हुआ है। दलित महिलाऐं अपने जन्म से सी प्रारंभ हो जाने वाले कई भेदभावों का सामना करती हैं। यदि वे जीवित रहने में सफल होती हैं तो बिना किसी विलम्ब के अपने अस्तित्व का प्रश्न उन्हें चिंतित करता है। भेदभाव और मनोवैज्ञानिक उत्पीड़न का यह काफी लम्बा दौर मानसिक आघात द्वारा चोट पहुँचाना है, जो कि उनके द्वारा सार्वजनिक क्षेत्रों के अंदर भी और बाहर भी बर्दाश्त किये जाने वाले भावनात्मक और शारीरिक उत्पीड़न को रेखांकित करता है।

## लिंग अनुपात

2001 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जाति का लिंग अनुपात 900 है, जो कि 1991 में मात्र 875 था। इस प्रकार जनगणना 2001 में समुदाय के लिंग अनुपात में प्रति हजार 25 अंक की वृद्धि हुई है। उत्तर प्रदेश में सामान्य वर्ग की तुलना में अनुसूचित जाति समुदाय का लिंग अनुपात शायद अधिक हो परंतु अनुसूचित जाति समुदाय में लिंग अनुपात के राष्ट्रीय औसत 936 से यह फिर भी कम है। आज़मगढ़ में लिंग अनुपात सबसे अधिक 1,040 है जबकि जलाऊ जिले में सबसे कम 830। संख्यात्मक रूप से बड़ी अनुसूचित जातियों में से चमार और कोरी में लिंग अनुपात 900 से नीचे दर्ज किया गया है, वहीं पासी और धोबी जातियों में यह अनुपात 900 से ऊपर है।

| आयुवर्ग | अनु. जाति (भारत) | सभी अनु. जाति (उ.प्र.) | पासी | धोबी | वाल्मीकि | चमार | कोरी |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| सभी | 936 | 900 | 919 | 908 | 900 | 893 | 889 |

## शिक्षा

अधिकारों के मूलभूत मानक और शिक्षा एक–दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। यह स्थापित है कि सिर्फ़ अधिकारों के बारे में जानकारी ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि प्राप्त जानकारी/जागरूकता का उपयोग करने की योग्यता भी आवश्यक है। शिक्षा व्यवस्था जन–साधारण को यह योग्यता प्रदान करती है कि लक्ष्य प्राप्ति के लिये क्या किया जाना आवश्यक है।

शिक्षा की कमी के साथ ही शिक्षा से जुड़ा विकास दलित महिलाओं के लिए एक और महत्वपूर्ण समस्या है जो कि उन्हें दलित और अदलित दोनों ही समुदायों के पुरूषों की तुलना में असुविधाजनक स्थिति में रखती है। Amnesty International द्वारा अपनी एक रिपोर्ट में निम्नलिखित दावा किया गया था –

*''दलित और आदिवासी समुदाय के सदस्य सभी जगह अपने प्रतिपक्ष अदलितों की तुलना में बहुत ही कम शिक्षित होते हैं। उत्तर प्रदेश और राजस्थान में दलित समुदायों में महिलाओं की शिक्षा का स्तर देश के न्यूनतम स्तर में से है।''*

उत्तर प्रदेश में 62.1 प्रतिशत अनुसूचित जाति पुरूष जनसंख्या के सापेक्ष अनुसूचित जाति की औसतन 30.5 प्रतिशत महिलाऐं ही शिक्षित हैं। (10) ग़ाज़ियाबाद में महिला शिक्षा दर सबसे ज़्यादा 51.2 प्रतिशत है, वहीं सबसे कम महिला शिक्षा दर 19.5 प्रतिशत बलरामपुर में है। इससे यह स्पष्ट होता है कि न केवल समुदाय के बाहर बल्कि समुदाय की भीतर भी पुरूष और महिलाओं के मध्य एक बड़ी दूरी है। एक और आश्चर्यजनक तथ्य ग्रामीण उत्तर प्रदेश में दलित महिलाओं में न्यून शिक्षा दर है। बलरामपुर की ग्रामीण महिलाओं के मध्य यह न्यूनतम 8.65 प्रतिशत है। यदि हम उत्तर प्रदेश में बड़े अनुसूचित जाति समुदायों के बीच महिलाओं के शिक्षा स्तर को देखें, तो हमें निम्नलिखित दृश्यलेख नज़र आता है –

| शिक्षा दर | समस्त अनु. जातियाँ | चमार | धोबी | वाल्मीकि | कोरी | पासी |
|---|---|---|---|---|---|---|
| महिलाऐं | 30.5 | 32.7 | 33.0 | 33.8 | 30.4 | 24.0 |

## स्वास्थ्य

दलित महिलाऐं प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं को लगभग स्थाई रूप से नकारती रही हैं और प्रसव सेवाओं के लिए अस्पताल में भर्ती होने से इन्कार करने के कारण या गर्भावस्था के दौरान पर्याप्त देखभाल और चिकित्सा के अभाव में कई महिलाऐं मृत्यु शैया पर जा चुकी हैं। अपोषण, ख़ून की कमी (अनीमिया), भोजन की अपर्याप्त उपलब्धता और सबसे आखिर में भोजन करने की पारिवारिक प्रथा महिलाओं के ख़राब स्वास्थ्य का प्रमुख कारण हैं। उन्हें भर्ती होने के लिए अस्पताल के कर्मचारियों को रिश्वत देनी पड़ती है साथ ही उन्हे जननी सुरक्षा योजना के अंतर्गत मिलने वाले लाभों को भी नकारा जाता है।

*''देवरति (25 वर्ष) ने कानपुर के एक कस्बे के शासकीय अस्पताल में एक बच्चे को जन्म दिया। इसके पहले उसके पति दिलीप को उसे अस्पताल में भर्ती कराने के लिए एक अधिकारी को 500 रु. रिश्वत देनी पड़ी। शासकीय नियमानुसार अस्पताल में भर्ती होने के लिए कोई शुल्क नहीं देना होता और प्रसूति के लिए आई महिला को भत्ते के रूप में 1400 रु. दिये जाते हैं। परन्तु इसके विपरीत बच्चे के जन्म के बाद दिलीप से अतिरिक्त 1000 रु. का भुगतान करने के लिए कहा गया। जब उसने पैसे देने से इन्कार किया कि उसके पास पैसे नहीं हैं, तो उसकी पत्नी को अस्पताल से बाहर निकाल दिया गया, बावजूद इसके कि उसे रक्तस्राव हो रहा था और वह होश में भी नहीं थी। देवरति का अपने गाँव पहुँचने के कुछ समय पश्चात ही देहांत हो गया।''*

इसी प्रकार एक और मामले में अम्बरपुर गाँव की एक महिला कमला पत्नी रामप्रकाश को एक बच्ची को जन्म देने के बाद तब अस्पताल से बाहर कर दिया गया जब उसके परिवार के सदस्यों ने 500 रु. रिश्वत देने से इन्कार कर दिया और उसके स्थान पर जननी सुरक्षा योजना के अंतर्गत बी.पी.एल. श्रेणी की महिला को दिये जाने वाले 1400 रु. की माँग की।

इन मामलों को केवल कुछ–एक प्रकरणों के रूप में नहीं देखा जा सकता जो कि उत्तर प्रदेश के सुदूरवर्ती संकुचित गाँवों में ही दिखाई देते हैं बल्कि राज्य के केन्द्र कानपुर में भी यह घटनाऐं प्रकाश में आई हैं। इससे अन्यत्र स्थानों पर इस स्थिति का और भी अच्छी तरह से आंकलन किया जा सकता है। एक और दुःखद पहलू जन स्वास्थ्य सेवाओं का निजीकरण और व्यवसायीकरण है, जिसकी वजह से ग़रीब दलित महिलाऐं या तो रोगयुक्त स्वास्थ्य के साथ रहने को मजबूर होती हैं या फिर स्वास्थ्य संबंधी कर्ज के साथ।

## हिंसा

दलित महिलाऐं अपने घरों के अंदर और बाहर दोनों ही जगह हिंसा के कई रूपों का सामना करती हैं। प्रतिवर्ष घरेलू हिंसा, छेड़छाड़, दहेज प्रताड़ना, द्विविवाह, बलात्कार, पति द्वारा सताये जाने, अपहरण, कार्यस्थल पर लैंगिक भेदभाव और छेड़छाड़ की हज़ारों शिकायतें दर्ज की जाती हैं। दलित महिलाओं के ख़िलाफ़ घरेलू हिंसा विस्तृत पैमाने पर है। घर के अंदर महिलाओं को पर्याप्त दहेज साथ न लाने, लड़कों को जन्म न देने, बदसूरत या अत्यधिक सुन्दर होने, या तथाकथित रूप से अविश्वासपात्र होने, पति को प्रत्युत्तर देने आदि कारणों से प्रताड़ित किया जाता है। पतियों का शराबी होना भी इस घरेलू हिंसा में एक बड़ा सहयोगी कारक है। घरेलू हिंसा की परिणति कुछ महिलाओं को उनके पति द्वारा छोड़ देने या पति के घर (ससुराल) को छोड़ने के लिए विवश करने के रूप में हुई है। तथापि दलित महिलाओं के मामले में एक सकारात्मक पहलू यह भी है कि उनके समुदाय में तलाक तथाकथित उच्च जातियों की तरह कलंकित नहीं है।

दलित महिलाओं के ख़िलाफ़ प्रचलित अत्यंत अमानवीय परंपरा देवदासी प्रथा है जिसमें किशोर लड़कियों को देवता या मंदिरों के लिये समर्पित कर दिया जाता है, जो आगे चलकर गाँव के पुजारियों और उच्च जाति के लिए एक स्वीकार्य वैश्यावृत्ति की व्यवस्था के रूप में विकसित हुआ। धर्म के नाम पर 6 से 8 वर्ष की हजारों अछूत लड़कियों को ईश्वर की दासी (देवदासी) बनने के लिए बाध्य किया जाता है। एक बार देवदासी बन जाने के बाद लड़कियाँ विवाह के लिए असमर्थ होती हैं और मंदिर के पुजारियों व उच्च जाति के पुरूषों द्वारा उनका बलात्कार किया जाता है। देवदासी प्रथा के लिए समर्पित लड़कियाँ विवाह करने और बाहर काम करने में असमर्थ होती हैं, वे यौन दासता में ही जीवन व्यतीत करती हैं और अंतिम रूप से शहरी वैश्यालयों में वैश्यावृत्ति के लिए नीलाम कर दी जाती हैं।

बाल–विवाह और 16 वर्ष से कम आयु की दलित लड़कियों के साथ यौन संबंध के संदर्भ में दलित महिलाओं का यौन शोषण एक आम बात है। यहाँ तक कि पिता, भाई, पति के पिता (ससुर) एवं रिश्तेदारों द्वारा निरंतर शोषण की ख़बरे प्रतिष्ठित क्षेत्रीय दैनिकों में प्रकाशित की गई हैं। बाहरी लोगों के विरूद्ध अपने अधिकारों के लिए खड़े होने में दलित महिलाओं की असमर्थता को बहुत हल्की प्रतिक्रिया के साथ लिया जा सकता है परंतु उससे कहीं ज़्यादा कमज़ोर पक्ष वह हिंसा है जिसका वे अपने ही घरों में सामना करती हैं। यह हिंसा अक्सर महिलाओं के साथ शाब्दिक दुर्व्यवहार, शारीरिक प्रताड़ना और वैवाहिक बलात्कार सहित यौन दुर्व्यवहार के रूप में पकट होती है। कम उम्र की महिलाओं के विवाहित होने की उच्च दर का एक प्रमुख कारण लोगों से उनकी असुरक्षा है। महिलाऐं अपनी किशोरावस्था से ही लक्षित की जाती हैं जिसके कारण उनके अभिवावक उनकी सुरक्षा के प्रति चिंतित रहते हैं और इसी वजह से वे किशोरावस्था के पहले ही लड़कियों का विवाह कर देना अधिक सुरक्षित पाते हैं।

हिंसा में अन्य चीजों के मुकाबले महिलाओं की लैंगिकता को ही अधिक लक्षित किया जाता है। परंतु एक दलित महिला और एक उच्च जाति की महिला के साथ किये जाने वाले यौन दुर्व्यवहार के क्षेत्र में भी अंतर है। जहाँ उच्च जाति की महिलाओं के लिए हिंसा का स्थान अधिकांशतः निजी होता है वहीं दलित महिलाऐं सार्वजनिक स्थानों में हिंसा का शिकार अधिक होती हैं। उत्तर प्रदेश में सार्वजनिक रूप से महिलाओं को नग्न करने, सामुहिक बलात्कार एवं उनके पति सामने ही शीलभंग करने के कई प्रकरण सामने आए हैं। महिलाओं को सार्वजनिक उपभोग की वस्तु

माना जाता है जिन पर अत्याचार उनके पति, पिता या पूरे समुदाय को सिर्फ़ सबक सिखाने के लिए किया जाता है।

12 फरवरी 2006 को औरैया जिले के अचल्दा गाँव में वीरेश यादव समेत चार अन्य उच्च जाति के पुरूषों ने 15 वर्षीय दलित युवती अंजू की एक बांह काट दी, जब उसने उक्त लोगों द्वारा गाँव के समीप ही खेत में अपने बलात्कार की कोशिश का प्रतिरोध किया। साथ ही पुलिस ने उसकी शिकायत दर्ज करने से इन्कार कर दिया।

अधिकांश दलित महिलाऐं जिस रोज़गार में लगी होती हैं उसकी प्रकृति भी उन्हें यौन दुर्व्यवहार के लिए मुख्य रूप से असुरक्षित बनाती है। यहाँ तक कि भूमिस्वामियों द्वारा किये जाने वाले यौन दुर्व्यवहार को नोट भी किया गया है। उन्हें आर्थिक व शारीरिक रूप से बंधुआ बनाए रखना, प्रभावी जातियों के भूमिस्वामियों द्वारा ग़रीब महिलाओं पर किये जाने वाले शारीरिक, मौखिक और यौन हिंसा में बंटा हुआ है, जो अक्सर ग़रीब महिलाओं के आर्थिक अधिकारों के दावे (जो कि जाति–वर्ग संबंधों को चुनौती देता है) पर प्रतिक्रियात्मक रूप से उभरकर आती है।

यहाँ उचित मज़दूरी या अपनी भूमि पर स्वामित्व या अपनी यौन अखंडता के अधिकार की मांग भी उन्हें दुर्व्यवहार का शिकार बनाती है। पुलिस एवं प्रशासन के अधिकारियों के भी जाति और वर्ग के अपने पूर्वाग्रह हैं जो सामान्यतः कमज़ोर वर्ग के हितों के ख़िलाफ़ काम करते हैं।

एक अध्ययन (11) भूमिस्वामियों, उच्च जाति के ग्रामवासियों और पुलिस अधिकारियों द्वारा ग़रीब दलितों और आदिवासी समुदायों के ख़िलाफ़ किये गए मार–पीट, बलात्कार, यौन शोषण और छेड़छाड़ आदि कृत्यों की एक उदास करने वाली तस्वीर उजागर करता है। अध्ययन की रिपोर्ट में उद्धृत किया गया है कि इन प्रकरणों में से कुछेक 5 प्रतिशत ही अदालतों तक पहुँचते हैं क्योंकि तीव्र भेदभाव और निम्न जातियों के पीड़ितों के प्रति सम्मान/पक्ष की कमी पीड़ितों के लिए यह वास्तविक रूप से असंभव बनाती है, ख़ासकर महिलाओं के लिए। यहाँ तक कि पुलिस स्टेशन में शिकायत दर्ज करना भी काफी मुश्किल होता है जो कि एक तो बहुत ही कम स्वीकार/दर्ज की जाती हैं, दूसरे दर्ज शिकायतों की गंभीरता से जाँच–पड़ताल व न्यायसंगत क्रियान्वयन भी बहुत ही कम किया जाता है।

हिंसा के पीड़ित व्यक्ति द्वारा एफ.आई.आर. दर्ज करने पर स्थानीय पुलिसकर्मी द्वारा ली जाने वाली शुल्क (रिश्वत) के साथ ही कानूनी समस्याऐं प्रारंभ हो जाती हैं। जब हिंसा करने वाला उच्च जाति या प्रभावशाली परिवार से संबंध रखता हो, तो पुलिसकर्मी सामान्यतः शिकायत दर्ज करने से ही इन्कार कर देते हैं। इससे भी बदतर स्थिति यह है कि जो महिला बलात्कार या यौन दुर्व्यवहार की शिकायत दर्ज कराना चाहती है, पुलिसकर्मियों द्वारा उसके साथ दुर्व्यवहार व अपमानजनक व्यवहार किया जाता है। पुलिसकर्मियों द्वारा निरंतर रिश्वत की माँग की जाती है, गवाहों को डराया जाता है, साक्ष्यों के साथ छेड़खानी की जाती है/छुपाया जाता है और महिला के पति को पीटा जाता है।

उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जिले के रामनगर गाँव में एक खेतिहर मज़दूर लेबरा ने शिकायत की कि उसे और उसकी 12 वर्षीय पुत्री कुसुमा को एक भूमिस्वामी द्वारा झूठी शिकायत पर अनातू पुलिस स्टेशन ले जाया गया और थाना प्रभारी (SHO) द्वारा बलात्कार किया गया। उपलब्ध माध्यमों द्वारा न्याय प्रप्ति के लिए दोषी को सामने लाने की लेबरा की सारी कोशिशें नाकाम रहीं।

निम्न जाति की महिलाओं द्वारा दर्ज की गई बलात्कार की शिकायतों में से 30 प्रतिशत सामान्यतः पुलिस अधिकारियों द्वारा झूठी करार दी जाकर ख़ारिज कर दी जाती हैं। कुछ मामलों में, जो कि अदालत में पहुँच चुके होते हैं, कभी–कभी वकील अपने मुवक्किल को केस छोड़ देने की सलाह देने के लिए आरोपी से पैसे भी स्वीकार करते हैं।

कभी–कभी उच्च जाति के ग्रामीणों द्वारा बलात्कार पीड़ित पर आक्रमण में पुलिसकर्मी खुद भी शामिल होते हैं जो कि इन आक्रमणों को रोकने के स्थान पर जो कुछ किया जा रहा है उसके खिलाफ किसी प्रकरण को रोकने की कोशिश करते हैं। इस प्रकार की घटनाओं में कई बलात्कार पीड़ित पुलिस सुरक्षा के भीतर मार डाले जाते हैं।

# अध्याय – 8
# दलित : शैक्षिक परिदृश्य

दलितों की साक्षरता दर जनगणना 1991 के समय दर्ज 26.5 प्रतिषत से बढ़कर जनगणना 2001 में 46.3 प्रतिषत हो गई है। इस दषकीय गणना में दलित साक्षरता दर में 20.1 प्रतिषत की वृद्धि के बावजूद राष्ट्रीय औसत 54.7 प्रतिषत की तुलना में यह बहुत नीचे है। यहाँ पुरुष व महिलाओं की साक्षरता दर में भी बहुत अधिक अंतर है। उत्तरप्रदेष में दलित पुरुष व महिला साक्षरता दर (क्रमषः 60.3 व 30.5 प्रतिषत) राष्ट्रीय स्तर पर दलित पुरूष व महिलाओं की साक्षरता (क्रमषः 66.6 प्रतिषत व 41.9 प्रतिषत) से नीचे है। बड़े दलित समुदायों में चमार और धोबी की साक्षरता दर अधिकतम (49 प्रतिषत) पाई गई जबकि पासी की साक्षरता दर न्यूनतम थी। महिला साक्षरता के मामले में भी इन समुदायों में यही स्थिति पाई गई।

जिले के स्तर पर दलित साक्षरता सर्वाधिक गाजियाबाद में (62.3 प्रतिषत) और सबसे कम बलरामपुर में (24.4 प्रतिषत) है। सर्वाधिक पुरुष साक्षरता दर (75ण्2 प्रतिषत) और सर्वाधिक महिला साक्षरता दर (48.1 प्रतिषत) कानपुर नगर में दर्ज की गई। इसी प्रकार न्यूनतम पुरूष साक्षरता दर बलरामपुर में (35.2 प्रतिषत) और न्यूनतम महिला साक्षरता दर श्रावस्ती में (11.3 प्रतिषत) पाई गई।

षिक्षित दलितों में 38 प्रतिषत या तो किसी भी शैक्षिक स्तर पर नहीं हैं या फिर प्राथमिक स्तर के नीचे हैं। 5–14 वर्ष आयुवर्ग के 133 लाख दलित बचचों में से केवल 58.3 लाख (56.4 प्रतिषत) बच्चे ही विद्यालय जाते हैं। लगभग 45.1 लाख बच्चे कभी विद्यालय नहीं गए। बड़े दलित समुदायों में केवल चमार और धोबी समुदाय के 60 प्रतिषत बच्चे विद्यालय जाते हैं। पासी, वाल्मीकि और कोरी समुदाय में यह अनुपात 51–57 प्रतिषत है।

प्राथमिक और माध्यमिक स्तर तक षिक्षा प्राप्त करने वाले दलितों का प्रतिषत क्रमषः 27.1 और 18.5 है। उच्चतर माध्यमिक स्तर तक षिक्षितों का प्रतिषत 13.3 प्रतिषत है। यहाँ माध्यमिक स्तर के बाद साक्षरों के प्रतिषत में तेजी से गिरावट आई है। मैट्रिक तक षिक्षितों का प्रतिषत माध्यमिक स्तर का लगभग आधा है और मैट्रिक स्तर का प्रतिषत स्नातक और उससे आगे के स्तर पर एक तिहाई रह जाता है। यह उत्तरप्रदेष में षिक्षा के विभिन्न स्तरों पर दलितों के बाहर होने को इंगित करता है। उत्तर प्रदेष में मात्र 3 प्रतिषत दलित स्नातक और उससे ऊपर तक षिक्षित हैं। ग़ैर तकनीकी और तकनीकी डिप्लोमा प्राप्त करने वाले दलित बिल्कुल नगण्य मात्र 0.1 प्रतिषत हैं।

आंकड़े दलितों के शैक्षिक स्तर में सुधार का चित्र प्रस्तुत कर सकते हैं परंतु वास्तविकता इसके बिल्कुल विपरीत है। षिक्षा उन्हें पढ़ने और लिखने की योग्यता तो प्रदान करती है परन्तु क्या वही षिक्षा उन्हें उनके मूलभूत अधिकार प्राप्त करने में भी सक्षम बनाती है, यह अपने–आप में एक बड़ा प्रष्न है।

## विभिन्न स्तरों पर समुदाय द्वारा प्राप्त शिक्षा

| समुदाय | स्तरविहीन षिक्षित | प्राथमिक से नीचे | प्राथमिक | माध्यमिक | मैट्रिक / उ. माध्यमिक / इंटरमीडियेट | तकनीकि / गै़रतकनीकि डिप्लोमा | स्नातक और उससे ऊपर |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| सभी | 4.6 | 33.4 | 27.1 | 18.5 | 13.3 | 0.1 | 3.0 |
| चमार | 4.3 | 32.5 | 26.9 | 18.8 | 14.1 | 0.1 | 3.3 |
| पासी | 5.8 | 37.9 | 27.0 | 16.7 | 10.5 | 0.0 | 2.2 |
| धोबी | 4.2 | 32.1 | 26.4 | 19.7 | 14.3 | 0.1 | 3.2 |
| कोरी | 4.7 | 31.8 | 28.7 | 19.4 | 12.6 | 0.1 | 2.7 |
| वाल्मीकि | 4.3 | 33.2 | 30.7 | 20.2 | 10.2 | 0.0 | 1.4 |

दुर्व्यवहार, अपमान, हिंसा, जाति आधारित भेदभाव, बहिष्कार, अलगाव, सजा और प्रताड़ना के कारण कई दलित बच्चे विद्यालय से बाहर ही रह जाते हैं। साथ ही शैक्षणिक संस्थानों की अलभ्यता, ग़रीबी, षिक्षा की ख़राब गुणवत्ता और विद्यालयों से भौतिक दूरी भी उन्हें इस श्रेणीक्रम और अलगाव से भरी सामाजिक व्यवस्था से बाहर निकलने से रोकती है।

औरई के जिलाधीष ने रामपुरा विकासखण्ड में मजीठ गाँव के प्राथमिक विद्यालय के तीन षिक्षकों को पुलिस के हवाले किया। एक आकस्मिक दौरे के समय जिलाधीष को छात्रों और उनके अभिवावकों ने बताया कि षिक्षकों द्वारा मध्याह्न भोजन के समय दलित बच्चों की प्लेट निरंतर फेंक दी जाती है, उन्हें बाकी विद्यार्थियों से अलग बिठाया जाता है और अलग छड़ी से दण्डित किया जाता है, और अलग छड़ी से दण्डित के बावजूद भी तुरन्त ही षिक्षक द्वारा हाथ धोये जाते हैं।

एक अन्य घटना में शासकीय प्राथमिक विद्यालय षिवरामपुर की कक्षा 2 के छात्र सुरेष मुसहर (8 वर्ष) ने जब अपने खोए हुए बस्ते की माँग की तो उसे षिक्षक द्वारा कई बार बुरी तरह पीटा गया। बस्ता लौटाते समय षिक्षक का कहना था कि –''सुरेष क्यों इस खोए हुए बस्ते और किताबों के लिए चिंतित है जबकि उसके समुदाय के लोगों को स्थाई रूप से पशु चराने हैं और ऊँची जाति के लोगों के लिए काम करना है।''

दलित बच्चों को छात्रों के लिए पदत्त चटाई पर बैठने की अनुमति न होना और मध्याह्न भोजन के समय अलग बैठने की कई घटनाऐं हैं। जालौन जिले के भगवानपुर गाँव के शासकीय प्राथमिक विद्यालय में कक्षा 4 के छात्र संजीवकुमार ने बताया कि – ''मेरी कक्षा के ठाकुर और ब्राह्मण छात्र मुझसे चटाई से दूर रहने को कहते हैं और षिक्षक मुझे नीचे जमीन पर बैठने को कहते हैं। स्कूल में मध्याह्न भोजन के समय हमें जबरन सबसे बहुत दूर बिठाया जाता है और सबसे अंत में भोजन दिया जाता है। सामान्य जाति के बच्चे हमारे साथ खेलना पसंद नहीं करते। जब हम षिक्षक के पास अपने गृहकार्य या कक्षा में किये गए कार्य की जाँच कराने जाते हैं तो वे उसे बिना छुए ही देखते हैं।''

उत्तरप्रदेष में यह भेदभाव कई रूपों में है, जैसे कि दलित बच्चों को सामूहिक बर्तन से पानी पीने की मनाही, मध्याह्न भोजन पकाए जाने वाली रसोई में प्रवेष पर प्रतिबंध, बच्चों से शारीरिक श्रम कराना (विद्यालय की सफाई, निर्माण कार्य में ईंटें ढोना आदि) और षिक्षकों द्वारा अपने घरों में भी दलित बच्चों से काम कराना। अपमानजनक सम्बोधन, उन्हें षिक्षा के अयोग्य माना जाना, उच्च जाति के बच्चों का पक्ष लेना, जाति आधारित टिप्पणियाँ और उनके कपड़ों, व्यवहार व पारंपरिक व्यवसाय पर टिप्पणियाँ भी ठीक उसी तरह से उपयोग में लाई जाती हैं जिस प्रकार कि शारीरिक बर्ताव। यहाँ तक कि षिक्षकों द्वारा छात्रों को उनके उपनाम से सम्बोधित किया जाना भी पाया गया। उच्च जाति के षिक्षक, जो स्वयं के बच्चों को निजी स्कूलों में भेजते हैं, निचली जाति के छात्रों के साथ भेदभाव करते हैं। और यह भेदभाव नेतृत्व करने की भूमिका में उन्हें नकारने व सेवक के रूप में उनसे काम लिये जाने के रूप में भी किया जाता है। यहाँ तक कि विद्यालय के शौचालयों की सफाई भी दलित बच्चों से कराई जाती है।

एक नवीनतम सर्वेक्षण[14] के अनुसार उत्तरप्रदेष के 28 जिलों में दलित जातियों के छात्र और स्टाफ शासकीय विद्यालयों में आज भी भेदभाव का सामना कर रहे हैं। यह भेदभाव और अलगाव बहुत व्यापक है, जैसे कि षिक्षक द्वारा दलित बच्चों को दण्डित करने के लिए अलग छड़ी का उपयोग करना आदि।

मानवाधिकार आयोग के 67वें सत्र से पहले षिक्षा के अधिकार पर एक विषेष रिपोर्ट में यह नोट किया गया कि – ''षिक्षकों का यह मानना है कि दलित विद्यार्थी कुछ नहीं सीख सकते अगर उन्हें पीटा न जाए।''

हाल ही में ज़ारी की गई शैक्षिक विकास सूची में उत्तरप्रदेष का 31वाँ स्थान है जो कि बड़ी ही दयनीय स्थिति को प्रदर्षित करता है। एक ओर जहाँ षिक्षा के मूलभूत मानदण्डों की पूर्ति नहीं हो सकी है, दलित बच्चे विद्यालयों में प्रताड़ित किये जाते हैं, यहाँ तक कि मूलभूत षिक्षा को भी प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं, वहीं उत्तरप्रदेष सरकार विद्यार्थियों के बीच कम्प्यूटर साक्षरता बढ़ाने के लिए राज्य में तकरीबन 2500 विद्यालयों में षिक्षा के आधुनिकीकरण में लगी हुई है।

# अध्याय – 9
# दलित और कल्याणकारी राज्य

संविधान का अनुच्छेद 38, भारतीय कल्याण व्यवस्था के लिए एक कुंजी के रूप में उल्लेखनीय है। यह अनुच्छेद लोगों के कल्याण में वृद्धि के लिए राज्य को एक सामाजिक व्यवस्था सुरक्षित करना आवश्यक बनाता है।

अनुच्छेद के अनुसार – *''राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्राणित करें, भरसक प्रभावी रूप में स्थापना और संरक्षण करके लोक कल्याण की अभिवृद्धि का प्रयास करेगा।''* (38(1))

राज्य को स्पष्ट और संपूरक दिशा–निर्देश प्रदान करने के लिए संविधान में ऐसे अनुच्छेद हैं जो राज्य को निम्नलिखित बिंदु सुनिश्चित करना आवश्यक बनाते हैं –

1. जीवन का अधिकार (अनु. 21)
2. यथेष्ट आजीविका की उपलब्धता (अनु. 39 'ए')
3. आर्थिक व्यवस्था के क्रियान्वयन का धन की एकाग्रता और उत्पादन के साधनों की आम हानि के रूप में परिणित न होना। (अनु. 39 'सी')
4. बच्चों को स्वस्थ वातावरण में विकास करने के अवसर और सुविधाऐं प्रदान करना (अनु. 39 'एफ')
5. जन सहायता, शिक्षा और काम का अधिकार सुनिश्चित करने के लिए प्रभावी प्रावधान बनाना (अनु. 41)

उपर्युक्त एवं कई अन्य संवैधानिक आदेशों की दृष्टि से केन्द्र एवं राज्य सरकार दोनों में ही कुछ योजनाऐं और कार्यक्रम प्रारंभ किये हैं, यद्यपि वर्तमान रिपोर्ट समीक्षा में सिर्फ उन योजनाओं (केन्द्र एवं राज्य द्वारा संचालित) को शामिल किया गया है जो कि ग़रीब सामान्य जनता एवं विशेषकर दलितों के बेहतर और सम्मानपूर्ण जीवनयापन के लिए पूर्वापेक्षित हैं।

हमने उ.प्र. में केन्द्र सरकार द्वारा संचालित कुद योजनाओं जैसे कि मध्यान्ह भोजन योजना, जन वितरण प्रणाली एवं राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम का विशेषकर दलितों के संदर्भ में अध्ययन व समीक्षा करने की कोशिश की है।

इस बात को ध्यान में रखते हुए कि उत्तरप्रदेश में वर्तमान सरकार की दलित केन्द्रित विचारधारा व बड़ा दलित आधार है, उत्तर प्रदेश में दलितों के लिए विशेष योजनाओं की भी समीक्षा करने का प्रयास किया गया है।

## मध्याह्न भोजन योजना (MMS)

नवम्बर 2001 में People's Union of Civil Liberties (PUCL) द्वारा दायर की गई एक जनहित याचिका के जवाब में भारतीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह आदेश जारी किया गया कि सभी राज्य सरकारें केन्द्र सरकार के प्राथमिक विद्यालयों में पोषणिक सहयोग के राष्ट्रीय कार्यक्रम (National Programme of Nutritional Support to Primary Education - NPNSPE), 1995 को छः माह के भीतर शासकीय प्राथमिक विद्यालयों में सभी बच्चों को मुफ्त व पका

हुआ भोजन प्रदान करने के लिए क्रियान्वित करें। तथापि न्यायालय के इस महत्वपूर्ण आदेश का उल्लंघन करते हुए उत्तर प्रदेश के कुल 16 जिलों में जून 2004 में इसे प्रारंभ किया गया।

इसके पूर्व 2003 में Indian Institute of Dalit Studies (IIDS) ने विशेषकर भोजन के अधिकार से संबंधित शासकीय कल्याण योजनाओं के क्रियान्वयन में दलितों के विरूद्ध जातिगत भेदभाव और शोषण को उजागर करने के लिए अध्ययन किया (थोराट एवं ली, 2007)। अध्ययन में स्वामित्व और सहभागिता के अधिकार तक दलितों की पहुँच, भोजन संबंधी शासकीय योजनाओं में उनके साथ किये जाने वाले व्यवहार का विश्लेषण किया गया। सम्पूर्ण भारत के 5 राज्यों – राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडु के 531 गाँवों में मध्याह्न भोजन योजना व जन वितरण प्रणाली है। अध्ययन में उत्तर प्रदेश के 5 जिलों (बलिया, बरेली, रामपुर, लखीमपुर खेड़ी और गाजीपुर) के 8 विकासखण्डों में 120 गाँवों का सर्वेक्षण किया गया। इस सर्वेक्षण के समय उत्तर प्रदेश में न्यायालय के आदेशानुसार पका हुआ भोजन उपलब्ध कराने के स्थान पर मध्याह्न भोजन की पूर्व योजना के अनुसार शुष्क राशन प्रदान किया जाना पाया गया।

निम्नलिखित तालिका में उत्तर प्रदेश में अध्ययन में सामने आये प्रमुख तथ्य दर्शाए गए हैं –

## तालिका 9.1 : उत्तर प्रदेश में दलित और मध्याह्न भोजन

### *उत्तर प्रदेश में विद्यालय के बच्चों के लिए शुष्क राशन वितरण*

**सेवाओं तक पहुँच**

1. लगभग प्रत्येक गाँव जिसने मध्याह्न भोजन योजना संबंधी प्रश्नों के उत्तर दिये, उन्होंने मुख्यतः शुष्क राशन वितरण व्यवस्था की कार्यप्रणाली की दो मूलभूत समस्याओं को उजागर किया।

   पहली – जहाँ व्यवस्था प्रतिमाह, हर बच्चे को 3 कि.ग्रा. गेहूं या चावल (अनाज का चुनाव स्थान के अनुसार) के वितरण का अधिकार देती है वहाँ पूरा 3 कि.ग्रा. अनाज बहुत ही कम दिया गया, इसके बजाय पी.डी.एस. वितरक, सरपंच, शिक्षक या इन सभी ने मिलकर लगभग 2 या 2.5 कि.ग्रा. अनाज का ही वितरण किया। दूसरे शब्दों में प्रति बच्चे निर्धारित 3 कि.ग्रा. से कम मात्रा का ही वितरण किया गया और शेष का अपयोजन किया गया।

   दूसरी – वितरण मुश्किल से ही कभी मासिक आधार पर किया गया। अधिकांशतः इसमें कई महीनों का समय लगा। कुछ मामलों में वितरण बिना निरंतरता या बिना किसी प्रत्याभूमि के किया गया। अधिकांश गाँवों में इस व्यवस्था (मध्याह्न भोजन योजना) का प्रसार तो है किन्तु बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार और गारंटी या निरंतरता की अनुपलब्धता के साथ।

2. उत्तर प्रदेश से प्राप्त जानकारी में 57 प्रतिशत जवाब यह स्पष्ट करते हैं कि कानून के मुताबिक अनाज का वितरण विद्यालय में ही किया गया जबकि अन्य 37 प्रतिशत के अनुसार अपना 3 कि.ग्रा. अनाज प्राप्त करने के लिए बच्चों को या तो पी.डी.एस. वितरक के घर जाना पड़ता था या फिर उसकी दूकान पर।

**सहभागिता**

3. 85 प्रतिशत गाँवों में अनाज का वितरण प्रभावशाली जाति के क्षेत्र किया गया जबकि केवल 10 प्रतिशत गाँवों में दलित क्षेत्रों में।

4. 94 प्रतिशत मामलों में शुष्क राशन वितरण व्यवस्था के संयोजक उच्च जाति के व्यक्ति थे। केवल 2 गाँवों में दलित संयोजक और एक गाँव में अनुसूचित जनजाति का संयोजक था।

5. लिंग के संदर्भ में वितरण संयोजक अधिकाधिक संख्या में (97 प्रतिशत) पुरूष थे।

**व्यवहार**

6. सामने आने वाली सबसे आम घटना वितरक द्वारा कम अनाज (3 कि.ग्रा. के स्थान पर 2 या 2.5 कि.ग्रा.) प्रदान करना थी। यह व्यवहार मुख्यतः दलित बच्चों के साथ किया जाता था। अनाज वितरण के समय प्रभावशाली जाति के बच्चों को दलित बच्चों की तुलना में पूरा (3 कि.ग्रा.) अनाज प्रदान किया जाता था।

7. कई स्थानों पर यह बताया गया कि सरकारी मध्यस्थों द्वारा दलित बच्चों को प्रदान किया जाने वाला पूरा अनाज रख लिया गया और दलित बच्चों व उनके अभिवावकों को यह बताया गया कि अनाज की आपूर्ति नहीं हुई थी या फिर अनाज अपर्याप्त था। अन्य स्थानों पर यह भी देखा गया कि यदि दलित बच्चे किसी महीने में एक या अधिक दिन विद्यालय में उपस्थिन नहीं होते तो षिक्षक उन बच्चों को उनका अनाज देने से इन्कार कर देते हैं, जबकि प्रभावषाली जाति के बच्चों के साथ इस तरह का व्यवहार नहीं किया जाता।

*(स्रोत : Thorat & Lee, 2007)*

अध्ययन के अनुसार निष्कर्षतः शासकीय विद्यालयों में शुष्क राषन के वितरण में भृष्टाचार और जातिगत भेदभाव आधारित वितरण बड़े पैमाने पर है। कुछ मामलों में, वितरण प्रक्रिया में दलित बच्चों का शोषण साफ–साफ दिखाई देता है। उत्तर प्रदेष और बिहार मध्याह्न भोजन योजना के माध्यम से भोजन तक दलित बच्चों की पहुँच को सरल बनाने के बजाय उन पर आघात करते हुए प्रतीत होते हैं। यह भी देखा गया कि उत्तर प्रदेष, राजस्थान और तमिलनाडु में दलित बच्चों का एक बड़ा वर्ग मध्याह्न भोजन प्राप्त करने के लिए चरम असुरक्षा, तनाव और आषंका के क्षेत्र में प्रवेष के लिए विवष होता है। मध्याह्न भोजन तक दलित बच्चों की पहुँच गाँव या क्षेत्र में अस्थिर जाति संबंधी अनिष्चितता और परिस्थितियों पर निर्भर करती है।

अब उत्तर प्रदेष में पके हुए मध्याह्न भोजन का वितरण प्रारंभ हो चुका है तो इस बात की आवष्यकता है कि संयोजन, रसोइया, भोजन के लिए बैठने की व्यवस्था इत्यादि के संदर्भ में वास्तविक स्थितियों तक पहुँचा जाए। इस मामले में भी स्थितियाँ बदतर ही हैं, जैसे कि – दलित महिला द्वारा पकाए एक भोजन को खाने से बच्चों द्वारा इन्कार किये जाने की कई घटनाऐं हैं। बलिया, लखनऊ और इटावा में इस तरह की कई घटनाऐं प्रकाष में आई हैं और इस बात का काफी हो–हल्ला है कि उत्तरप्रदेष में एक दलित मुख्यमंत्री के होने के बावजूद ऐसी घटनाऐं अस्तित्व में हैं।

## जन–वितरण प्रणाली

भारत सरकार द्वारा लक्षित जन वितरण प्रणाली, विष्व में नियंत्रित खाद्य वितरण की सबसे बड़ी व्यवस्था होने के लिए प्रतिष्ठित है। व्यवस्था के एक हिस्से के रूप में सरकार भारतीय खाद्य निगम द्वारा ज़रूरतमंद क्षेत्रों चावल, गेहूँ, शकर और तेल जैसी आवष्यक खाद्य वस्तुऐं वितरित करती हैं, जहाँ कि ग़रीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोग बाजार मूल्य से कम और सरकार द्वारा तय की गई रियायती दरों पर वस्तुऐं ख़रीद सकते हैं। स्थानीय स्तर पर भण्डार

सरकार द्वारा प्रदान किया जाता है। शासकीय उचित मूल्य की दुकान या जनवितरण व्यवस्था की दुकान का संचालन स्थानीय सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त जन वितरण व्यापारी द्वारा किया जाता है।

उत्तरप्रदेष में तकरीबन 82 प्रतिषत जनसंख्या की आजीविका का मुख्य स्रोत कृषि है और कृषि से संबंधित कुल जनसंख्या का लगभग 80 प्रतिषत बहुत ही कम भूमि वाले और भूमिहीन किसान हैं। खाद्य सुरक्षा राज्य में एक गंभीर मुद्दा है। ऐसे कई गाँव हैं जहाँ बी.पी.एल. राषन कार्ड धारकों ने पिछले 5 वर्षों में अनाज का एक भी दाना प्राप्त नहीं किया है। अत्यंत ग़रीबी की स्थिति में रह रहे अन्त्योदय और अन्नपूर्णा राषन कार्ड धारक यदि 3–4 माह में एक बार खाद्यान्न का अपना कोटा प्राप्त कर लेते हैं तो स्वयं को भाग्यषाली मानते हैं। राषन की दूकान के मालिक पंचायत प्रधान की मिली–भगत से राषन कार्ड अपने पास रखते हैं और उन पर फर्जी अंकन के द्वारा ग़रीबों को उन्हीं के लिए उपलब्ध खाद्यान्न से दूर रखते हैं। खुले बाजार में खाद्यान्न का पहुँचना सम्पूर्ण राज्य में एक चिंतनीय विषय है। 2005 में भारत सरकार द्वारा प्रत्येक 100 कि.ग्रा. खाद्यान्न में से ग़रीबों के लिए निकाले गए 87 कि.ग्रा. में से केवल 34 कि.ग्रा. खाद्यान्न ही ज़रूरतमंदों तक वास्तविक रूप से पहुँच सका।

## तालिका 9.2 : उत्तरप्रदेश में दलित और जन वितरण प्रणाली (पी.डी.एस.)

### पहुँच

अध्ययन में उत्तरप्रदेष जन वितरण प्रणाली की सुलभता सुनिष्चित करने में सर्वाधिक लापरवाह होने के रूप में उभरकर सामने आया है। उत्तरप्रदेष में सर्वेक्षण किए गए गाँवों में 39 प्रतिषत में पी.डी.एस. दूकानों का अभाव था और केवल 7 प्रतिषत में एक से अधिक पी.डी.एस. दूकानें थीं। जबकि अन्य 5 राज्यों में औसतन 13 प्रतिषत गाँवों में पी.डी.एस. दूकानों का अभाव था किन्तु उत्तर प्रदेष की तुलना में दोगुने यानि 14 प्रतिषत गाँवों में एक से अधिक पी. डी.एस. दूकानें पाई गईं।

उत्तरप्रदेष में 82 प्रतिषत गाँवों में पी.डी.एस. दूकानें प्रभावषाली जातियों के क्षेत्र में स्थित थी, 16 प्रतिषत गाँवों में दलित बस्तियों में और 2 प्रतिषत गाँवों में अन्यत्र स्थानों पर।

### सहभागिता

सर्वेक्षण के आंकड़ों में सबसे ज़्यादा ध्यान आकर्षित करने वाली जानकारी पी.डी.एस. वितरकों में प्रभावषाली जातियों की प्रधानता और दलित प्रमुखों की कमी थी। उत्तर प्रदेष में 90 प्रतिषत पी.डी.एस. दूकानों पर प्रभावषाली जातियों का स्वामित्व था, केवल 10 प्रतिषत स्वामित्व अनुसूचित जातियों का था।

### व्यवहार

पी.डी.एस. दूकानदारों द्वारा समान कीमत पर प्रभावषाली जातियों की तुलना में दलितों को कम मात्रा प्रदान की गई। उत्तरप्रदेष में 56 प्रतिषत से अधिक गाँवों में वितरित की गई मात्रा में भेदभाव पाया गया।

उत्तरप्रदेष के 51 प्रतिषत गाँवों में कुछ पी.डी.एस. व्यवसायियों द्वारा कीमत को लेकर भी भेदभाव किया जाना सामने आया। जहाँ प्रभावषाली जातियों ने कम कीमत पर वस्तुऐं ख़रीदीं वहीं उसी मात्रा में वस्तु ख़रीदने के लिए दलितों से ज़्यादा कीमत ली गई।

व्यवसायी द्वारा जाति आधारित पक्षपात भी पाया गया, जो कि विभिन्न रूपों में था। कुछ स्थानों पर पी.डी.एस. व्यवसायी पूरे सप्ताह अपनी एवं अन्य प्रभावषाली जातियों के समुदाय को अपनी सेवा प्रदान करते थे और दलित समुदाय में अपने मनमाने तरीके से दिन निष्चित करके सप्ताह में एक या दो बार ही सेवाऐं प्रदान करते थे। सेवा में प्राथमिकता इस तथ्य में परिणित होती है कि जहाँ पी.डी.एस. वितरक की जाति लोगों या अन्य प्रभावषाली जाति के सदस्यों को तुरंत सेवा प्रदान की जाती थी, वहीं दलितों को इंतज़ार करना पड़ता था और उन्हें सबसे अंत में खाद्यान्न प्रदान किया जाता था। उत्तर प्रदेष में 56 प्रतिषत गाँवों ने प्रदान की जाने वाली मात्रा में विषमता, 51 प्रतिषत ने कीमत में अंतर, 54 प्रतिषत ने वितरक द्वारा अपनी जाति के लोगों का पक्ष लेने/प्राथमिकता देने की बात उजागर की, साथ ही 35 प्रतिषत गाँवों में यह भी स्पष्ट किया कि वितरण अस्पृष्यता (छुआछूत) का आचरण करते हैं।

स्रोत : Thorat & Lee, 2007

मुख्यमंत्री कार्यालय द्वारा जारी किये गए एक आदेष के अनुसार जन वितरण व्यवस्था में समाज के सभी वर्गों की सहभागिता के दृष्टिकोण से वर्तमान सरकार ने तय किया है कि उचित मूल्य की दूकानों के आबंटन में आरक्षण व्यवस्था को क्रियान्वित किया जाए। इसके अनुसार उचित मूल्य की दूकानों के आबंटन में 21 प्रतिषत अनुसूचित जाति, 2 प्रतिषत अनुसूचित जनजाति और 27 प्रतिषत अन्य पिछड़ी जाति के व्यक्तियों को तुरंत प्रभाव से आरक्षण दिया जाए। (CM Office Release, www.upgov.nic.in/news11.asp?idn=2641)

## राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम (नरेगा)

नरेगा (2005) को संसंद में पास होने के पष्चात् 5 सितम्बर 2005 को अध्यक्ष की सहमति प्राप्त हुई। यह विधेयक प्रत्येक ग्रामीण परिवार, जिसमें वयस्क न्यूनतम मज़दूरी पर शारीरिक श्रम करने के इच्छुक हों, को 1 वर्ष में 100 दिन के रोज़गार की गारंटी प्रदान करता है। भोजन के अधिकार को सुरक्षित करने के संघर्ष में एक महत्वपूर्ण और बड़ा हथियार होने की दृष्टि से भारत या विष्व में अन्य कहीं भी सामाजिक सुरक्षा कानून के इतिहास में यह निष्चित रूप से एक मील का पत्थर है। ;क्रींतनए2007द्ध

उत्तरप्रदेष में नरेगा के प्रथम चरण में 22 जिलों को समाहित किया गया और दूसरे चरण अतिरिक्त 19 जिलों को सम्मिलित किया गया। काम के लिए आवेदन करने वाले परिवारों में से आधे परिवारों को 2006–07 के दौरान जॉब कार्ड जारी किये गए। उत्तरप्रदेष उन राज्यों में से एक है जिनमें नरेगा का प्रदर्षन बहुत ही ख़राब रहा है। उत्तरप्रदेष में 56 रु. प्रतिदिन की औसत मज़दूरी पर मात्र 11 दिन ही रोज़गार उत्पन्न किया गया। राज्य द्वारा योजना के लिए प्रदत्त कोष का केवल आधा हिस्सा ही उपयोग में लाया जा सका। (16) जॉब कार्ड जारी करने, मज़दूरी के भुगतान एवं बेरोज़गारी भत्ते के भुगतान में बड़े पैमाने पर भृष्टाचार देखा गया। मस्टर रोल का अभाव, आंकलन की अनियमितता और तय राषि से कम का भुगतान राज्य में योजना को और भी बदतर स्थिति में ले आया है। इस योजना में महिलाओं की सहभागिता भी बहुत ही कम रही है, सिर्फ 24.5 प्रतिषत महिलाओं को काम प्राप्त हुआ है। 96 प्रतिषत बी.पी.एल. परिवारों ने अधूरे जॉब कार्ड प्राप्त किये हैं। जो जॉब कार्ड प्राप्त करने में सफल रहे वे काम प्राप्त करने में असफल रहे। यहाँ तक कि जहाँ–जहाँ जद्दोज़हद के बाद जॉब कार्ड बन गए वहाँ न तो कोई कार्य था और न ही कोई बेरोज़गारी भत्ता। उत्तरप्रदेष में कई जिलों में आत्महत्या और भूख से मृत्यु की ख़बरें भरी पड़ी हैं। हाल ही में पीलीभीत में एक ग़रीब किसान को एक अन्त्योदय कार्ड की माँग करने पर ग्राम प्रधान और

पुलिस द्वारा बुरी तरह पीटा गया जिसके परिणामस्वरूप अगले दिन उसने स्वयं को आग लगाकर आत्महत्या कर ली। (17) बनारस में एक गरीब किसान ने बैंक का कर्ज़ चुका पाने में असमर्थ होने के कारण अपने दो बच्चों समेत आत्महत्या कर ली। (18)

उत्तरप्रदेष में पिछले आमसभा चुनावों के पहले भोजन और रोज़गार अधिकार के लिए आंदोलन के अंतर्गत एक अध्ययन संचालित किया गया। अध्ययन के प्रथम चरण में चुने गए 22 जिलों में से 15 जिलों की 112 ग्राम पंचायतों और 653 परिवारों समेत 139 गाँवों का अध्ययन किया गया। (कींतनए 2007) सर्वेक्षण किये गए कुल परिवारों में से 68 प्रतिषत परिवार दलित थे और 64 प्रतिषत मामलों में आजीविका का मुख्य स्रोत मज़दूरी था।

## उत्तरप्रदेश में नरेगा का प्रारंभ

उत्तरप्रदेष में शुरूआत से ही राज्य सरकार द्वारा नरेगा का उपहास करना पाया गया। मुख्यमंत्री द्वारा अपनी राजनैतिक स्थिति मज़बूत करने के लिए शहरी युवाओं को चुनाव वर्ष में बेरोज़गारी भत्ता प्रदान करने के लिए बेरोज़गारी भत्ता योजना लागू करने के समय टिप्पणी की गई कि – ''काम करने की क्या ज़रूरत है जब सरकार युवाओं को बेरोज़गारी भत्ता देने को तैयार है। रोज़गार गारंटी अधिनियम के लिए संघर्ष करने की यहाँ कोई ज़रूरत नहीं है।''

क्रियान्वयन अधिकारियों के लिए यह संदेष बहुत ही स्पष्ट और प्रबल था। उत्तरप्रदेष में शुरूआत से ही नरेगा उपहासपूर्ण था। इसलिए यह कोई चौंकाने वाली बात नहीं है कि अधिनियम के क्रियान्वित होने के 1 वर्ष पष्चात् 8 फरवरी 2007 को उत्तरपदेष में इसके लिए दिषा–निर्देष तैयार किये गए। उत्तरप्रदेष में इसे जातिगत राजनीति की भूल–भुलैया और सामंती व्यवस्था के साथ जोड़ा गया (ख़ासकर जिस वर्ष में आमसभा चुनाव थे), जिसने नरेगा का अपनी पूर्ण अंतःषक्ति के साथ क्रियान्वित होने को प्रभावित किया।

(स्रोत : Dharu, 2007)

यदि यह वह आधार हैं जिनमें नरेगा क्रियान्वित हुआ, तो परिणामों का अंदाज़ा लगाया जा सकता है। इसी आधार पर उत्तरप्रदेष में नरेगा पर किये गए अध्ययन में संग्रहित परिणाम आष्चर्यजनक नहीं हैं, जो कि नीचे दिए गए हैं –

### तलिका 9.3 : उत्तरप्रदेष में राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम

| | |
|---|---|
| 1. | केवल 20 प्रतिषत लोगों को नरेगा के बारे में जानकारी थी और यह जानकारी भी बहुत सीमित थी। जैसे कि उनमें से कई लोग राषनकार्ड और जॉबकार्ड के बारे में स्पष्ट मत नहीं थे। |
| 2. | इन 20 प्रतिषत में से केवल 28.89 प्रतिषत को काम के लिए आवेदन की प्रक्रिया के बारे में जानकारी थी। |
| 3. | केवल 48 प्रतिषत ने जॉब कार्ड के लिए आवेदन किया, जिनमें से केवल 29 प्रतिषत को जॉबकार्ड प्राप्त हुआ। |
| 4. | 50 प्रतिषत मामलों में जॉबकार्ड ग्राम प्रधान या ग्रामसेवक (वी.डी.ओ.) के पास थे न कि मज़दूरों के पास |
| 5. | 67 प्रतिषत से अधिक मामलों में जॉब कार्ड परिवारी के पुरुष मुखिया के नाम पर थे। |
| 6. | 40 प्रतिषत मामलों में जॉब कार्ड के लिए आवेदन या फोटो के लिए पैसे लिये गए। |

| | |
|---|---|
| 7. | 70 प्रतिषत जॉब कार्ड धारक इस बात से अवगत नहीं थे कि काम पाने के लिए उन्हें आवेदन करना होगा। |
| 8. | काम के लिए आवेदन करने वाले परिवारों में से केवल 3 प्रतिषत को पावती प्राप्त हुई और केवल 31 प्रतिषत व्यक्तियों को काम मिला। |
| 9. | अधिक से अधिक 74 प्रतिषत पुरुषों व 83 प्रतिषत महिलाओं को एक सप्ताह से भी कम काम मिला। |
| 10. | केवल 6 प्रतिषत पुरुषों को चार सप्ताह से अधिक कार्य प्राप्त हुआ। |
| 11. | 61.34 प्रतिषत कार्यस्थलों पर पेयजल, प्राथमिक चिकित्सा, षिषु सदन और छाया का अभाव था। |
| 12. | 34.82 प्रतिषत मामलों में मज़दूरों को एक दिन के लिए भी न्यूनतम निर्धारित मज़दूरी प्राप्त नहीं हुई। |
| 13. | 36 प्रतिषत मामलों में भुगतान 2 माह बाद किया गया और 2 प्रतिषत मामलों में मज़दूरों को भुगतान प्राप्त करने के लिए 6 माह तक का भी इंतज़ार करना पड़ा। |
| 14. | चित्रकूट और लखीमपुर जिले में बहुत ही कम भुगतान यहाँ तक कि 20–25 रु. पाया गया। |
| 15. | सीतापुर के मिश्रिक विकासखण्ड के मोहम्मदनगर गाँव में विधवाओं को धमकाया गया कि अगर वे जॉबकार्ड चाहती हैं तो उनकी विधवा पेंषन रद्द कर दी जाएगी। खातुन, जौनपुर में महिलाओं ने कहा कि यह अधिनियम उनके हितों के लिये नहीं है। |

## दलितों के लिए विशेष शासकीय योजनाऐं

ऐसी स्थिति में जबकि दलित मुख्यमंत्री द्वारा कार्यों/योजनाओं की पतवार संभाली गई है, तब भी ऐसी कई योजनाऐं हैं जो कि पूरी तरह से अनुपयोगी पड़ी हुई हैं। उनमें से कई में तो जनवरी 2008 तक एक भी पैसा खर्च नहीं किया गया है। केन्द्र द्वारा संचालित योजनाओं की भी यही स्थिति है। योजनाओं के लिए प्रदान की गई राषि में से राज्य द्वारा आधी से अधिक राषि का उपयोग नहीं किया गया। निर्धारित किए गए कुल 623 करोड़ रु. में से 300 करोड़ से कम ही व्यय किया गया।

भारत में दलितों के लिए कल्याण योजनाओं को बढ़ावा देनक की कोषिष में योजना आयोग एक सामाजिक इकाई का गठन करेगा, जो कि स्पेषल कॉम्पोनेन्ट प्लान (एस.सी.पी.) कार्यक्रमों का स्वतंत्र रूप से अवलोकन करेगी। इन एस.सी.पी. कार्यक्रमों का लक्ष्य इस वर्ग को ग़रीबी रेखा से ऊपर लाना है। यह सामाजिक इकाई वित्तीय वर्ष 2008–09 से क्रियान्वित होगी। वर्तमान में इस तरह का कोई विषिष्ट ढाँचा (कार्यनीति) अस्तित्व में नहीं है, यद्यपि योजना में निष्चित किया गया है कि योजना कोष का 15 प्रतिषत किसी राज्य और केन्द्रीय मंत्रालय को एस.सी.पी. के अंतर्गत अनुसूचित जातियों के आर्थिक विकास पर खर्च करने के लिए दिया जाएगा।

**केन्द्र व राज्य सरकार द्वारा दलितों व आर्थिक रूप से कमज़ोर लोगों के लिए संचालित योजनाऐं**

| | प्रावधान/निर्धारित राशि | व्यय |
|---|---|---|
| **केन्द्र संचालित योजनाऐं** | | |
| अनुसूचित जाति के छात्रों के लिए छात्रवृत्ति | 421 करोड़ | 74 करोड़ |
| अनु. जाति के लिए स्व–रोज़गार | 125 करोड़ | 41 करोड़ |
| स्वरोज़गार अंतर्गत अनु. जाति के व्यक्तियों का प्रशिक्षण | 29.27 करोड़ | 2.6 करोड़ |
| अनु. जाति के लिए दूकानों की ख़रीद/ किराया | 6.85 करोड़ | 2.28 करोड़ |
| अनु. जाति सदस्यों के लिए लॉण्ड्री यूनिट स्थापित करने के लिए ब्याजमुक्त ऋण | 4.32 करोड़ | 1.42 करोड़ |
| अनु. जाति के छात्रों की योग्यता में वृद्धि | 47 लाख | 0 |
| अनु. जाति सदस्यों के लिये लघु डेयरी योजना | 4 करोड़ | 0 |
| दलितों के नागरिक अधिकारों की सुरक्षा | 16 करोड़ | 11 करोड़ |
| **राज्य संचालित योजनाऐं** | | |
| अत्यधिक पिछड़े समुदायों का कल्याण | 100 करोड़ | 0 |
| अनु. जाति सदस्यों के लिए पेंशन | 217 करोड़ | 137 करोड़ |
| अनु. जाति के कक्षा 9 व 10 के छात्रों के लिए अनु. जाति छात्रावास, आश्रम की तरह के स्कूल और पुस्तकालय स्थापित करने तथा कोल समुदाय के उत्थान के लिए योजनाऐं | 160 करोड़ | 0 |

सी.ए.जी. की एक रिपोर्ट द्वारा उत्तरप्रदेष सरकार को महिलाओं, अनुसूचित जाति/जनजाति एवं अल्पसंख्यकों को उत्तरप्रदेष अनुसूचित जाति वित्त एवं विकास निगम (यूपीएसएफडीसी) द्वारा व्यावहारिक वित्तीय कार्यक्रम प्रदान करने में असफल होने के लिए फटकारा गया।